हवा और पानी में जहर !

इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि हम सभी एक गंभीर पर्यावरण संकट के बीच फंसे हुए हैं। इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है संसाधनों का हमारा कुप्रबंध। हमने हवा, पानी और मिट्टी को प्रदूषकों से विषाक्त कर दिया है। ऐसा करके हमने पृथ्वी, वातावरण और सागर के प्राकृतिक बलों को इस प्रकार असंतुलित कर दिया है जो मानवता के लिए विनाशकारी हो सकता है। जनसामान्य तथा विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी यह पुस्तक न केवल ऊपर बताए गये तथ्यों पर प्रकाश डालती है बल्कि यह भी बताती है कि स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए पर्यावरण को किस प्रकार सुरक्षित रखें।

एन. मणिवासकम प्रिंसिपल पब्लिक हेल्थ लेबोरेट्री, कोयम्बटूर में जल विश्लेषक हैं और इंडियन वाटर वर्क्स एसोसिएशन के सदस्य हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा इसी विषय पर इनकी पहले प्रकाशित पुस्तक 'एनवायरनमेंटल पाल्यूशन' इतनी लोकप्रिय साबित हुई कि उसके कई संस्करण प्रकाशित करने पड़े थे।

लोकोपयोगी विज्ञान

हवा और पानी में जहर !

(पर्यावरण प्रदूषण)

एन. मणिवासकम

अनुवाद
सरिता भल्ला

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

रंगीन चित्रांकन : सुबीर राय

ISBN 81-237-2346-6

पहला संस्करण : 1998 *(शक 1919)*

We Breathe and Drink Poison *(Hindi)*

रु. 40.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

भगवान मुरुगा को समर्पित

विषस-सूची

प्राक्कथन

1950 से 60 के दशक के समाचारपत्र आमतौर पर हत्याओं, दुर्घटनाओं, दंगों, आदि के समाचार प्रकाशित करते थे। आजकल के समाचारपत्र भी ऐसी घटनाओं के समाचार प्रकाशित करते हैं, परंतु साथ में ही वे पर्यावरण की हत्या, औद्योगिक दुर्घटना, हैजा तथा आंत्रज्वर के कारण अनेक लोगों की मृत्यु, जैसे शीर्षकों से भी खबरें प्रकाशित करते हैं। आप यह पूछ सकते हैं कि इन 30 अथवा 40 वर्षों के अंतराल में क्या हो गया है ? तो सुनिए, वैज्ञानिक विकास ने अत्यधिक प्रगति की है और प्रौद्योगिकी नयी ऊंचाइयों को छूने लगी है। इसके लिए मानव जाति सदैव आभारी रहेगी क्योंकि प्रौद्योगिक विकास के बिना औद्योगिक प्रगति तथा समग्र विकास केवल स्वप्न की बातें रही होतीं। तथापि इस विकास का एक दूसरा पहलू भी है, और वह है इसके फलस्वरूप उत्पन्न प्रदूषण।

हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रदूषण विकास से जुड़ा हुआ है, परंतु इस सीमा तक नहीं। मानव स्वास्थ्य की कीमत पर नहीं। प्रदूषण को सह्य सीमा के भीतर रखना होगा। इसे धरती के लिए खतरा नहीं बनने दिया जा सकता। जहां विकसित देशों के लोग प्रदूषण के परिणामों के प्रति अधिक से अधिक जागरूक हो रहे हैं, वहीं विकासशील देशों (भारत सहित) के लोगों को इसकी रत्तीभर भी परवाह नहीं है। हम इसे या तो अपने दैनिक जीवन के अंग के रूप में लेते हैं अथवा इसकी तरफ से आंखें मूंद लेते हैं। यह पुस्तक हमारे अपने नागरिकों को प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से लिखी गयी है। प्रदूषण की आम प्रकृति से प्रारंभ करके मैंने वायु प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, पीड़कनाशी, जल प्रदूषण, तेल की परतें, ठोस कचरा, विकिरण, शोर और वृक्ष जैसे व्यापक से व्यापक विषयों को इसमें शामिल करने का प्रयास किया है। प्रदूषण के खतरों के विरुद्ध सुरक्षा के लिए एकजुट होकर 'धरती को बचायें' की अपील के साथ मैंने पुस्तक को समाप्त किया है। अपने शहरों, अपनी नदियों

तथा हाल ही में घटित प्रमुख दुर्घटनाओं के व्यापक विवरण को पुस्तक में उपयुक्त स्थान दिया गया है। प्रदूषण के गंभीर प्रभावों की जानकारी देने के लिए विश्व के अन्य भागों में घटित दुर्घटनाओं को भी पुस्तक में शामिल किया गया है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह आम आदमी और विद्यार्थियों के लिए संदर्भ सामग्री के रूप में, अध्यापकों को पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर जानकारी प्रदान करने की पुस्तक के रूप में तथा प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों से जुड़ी हुई व्यावसायिक संस्थाओं और संगठनों के लिए स्रोत पुस्तक के रूप में उपयोगी होगी।

इस पुस्तक को तैयार करने में अनेक लोगों ने सहायता की है जिसके लिए मैं उन सबका आभारी हूं। समय निकालकर इस पुस्तक को पुनः संयोजित करने के लिए मैं श्री मुरुगेसन को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहूंगा। मैं अपने उन सभी सहयोगियों के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस पुस्तक को पूरा करने में मेरी हर संभव सहायता की है। मैं अपनी मां अरुणागिरि अम्मा, अपनी पत्नी शिवाबगियम और अपने पुत्र शक्ति कुमार को उनके धैर्य तथा लगातार प्रोत्साहन देने के लिए धन्यवाद देता हूं। अंत में नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया को इस पुस्तक को प्रकाशित करने में अत्यधिक रुचि लेने के लिए सच्चे अर्थों में धन्यवाद देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

आभार

मैं भारतीय मानक ब्यूरो, नयी दिल्ली; कस्तूरी एंड संस लिमिटेड, मद्रास (दि हिंदू के प्रकाशक); लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली; वासन पब्लिकेशन (प्राइवेट) लिमिटेड, मद्रास (तमिल साप्ताहिक आनंद विकातन के प्रकाशक); दि एनवायरनमेंटल सोसायटी, मद्रास; मेसर्स ग्रीन पीस कम्युनिकेशन्स लिमिटेड, लंदन और डेकाटालुन्या, बार्सीलोना, स्पेन स्थित सेंटर फार यूनेस्को का उनके प्रकाशनों से कुछ आंकड़ों और छायाचित्रों को प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए कृतज्ञतापूर्वक आभार व्यक्त करता हूं।

मैं इस पुस्तक में प्रकाशित रंगीन पारदर्शियां उपलब्ध कराने के लिए स्टेटवाइड एअर पाल्यूशन रिसर्च सेंटर, यूनिवर्सिटी ऑफ केलीफोर्निया के डा. ओ. सी. टेलर तथा डा. ई. एफ. डार्ले (सेवानिवृत्त) का भी आभारी हूं।

कोयम्बटूर

–एन. मणिवासकम

लेखक की कलम से

पर्यावरण प्रदूषण जैसे विषय पर गैर-तकनीकी पुस्तक लिखना एक कठिन कार्य है। इसके लिए मुझे अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशनों को पढ़ना पड़ा. यह कार्य डा. सी. आर. कृष्णमूर्ति (भूतपूर्व निदेशक, भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ) द्वारा लिखे तथा विभिन्न दैनिक समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को पढ़ने के बाद ही संभव हो सका। इसी तरह बी. शेषाद्रि, सी. राघवन, निर्मला लक्ष्मण, कल्पना शर्मा और वनजा राम प्रसाद के लेख भी आंख खोलने वाले तथा हमारे पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने वाले हैं। अपने पाठकों से मेरा अनुरोध है कि समय-समय पर विभिन्न समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले इनके लेखों को अवश्य पढ़ें।



1

हमारा पर्यावरण

"धरती एक अत्यधिक बीमार ग्रह बन गयी है जिसका तुरंत उपचार आवश्यक है। पृथ्वी पर हर ओर प्रलय का खतरा मंडरा रहा है। यदि इसे न रोका गया, तो पूरा ग्रह रहने लायक नहीं रह जाएगा।"

—के. वी. नारायण[1]

हमारा पर्यावरण वायु, जल और मिट्टी का मिश्रण है जिसे तकनीकी भाषा में क्रमशः वातावरण, जलमंडल और स्थलमंडल के नाम से जाना जाता है। ये सब मंडल मिलकर जीवमंडल बनाते हैं।

इस जीवमंडल में सिर्फ मनुष्य ही नहीं बल्कि पेड़-पौधे, पशु, पक्षी, मछलियां और कीड़े-मकोड़े (कीट) और सूक्ष्मजीव (जैसे शैवाल, जीवाणु और विषाणु) भी रहते हैं। वातावरण हमें आक्सीजन देता है जबकि जलमंडल और स्थलमंडल से हमें पानी, भोजन और स्थल प्राप्त होता है। वातावरण और/अथवा जलमंडल और साथ ही स्थलमंडल में यदि किसी तरह का परिवर्तन होता है, चाहे वह भौतिक हो या रासायनिक, तो उसका प्रभाव जीवमंडल में रहने वाले हर जीव पर पड़ता है। इस परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं, और इस प्रदूषण के लिए जिम्मेदार कारकों को प्रदूषक कहते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक न तो प्रदूषण नाम की कोई चीज थी और न ही इसके किसी प्रकार के दुष्प्रभाव हमारे पर्यावरण पर देखे गये थे। प्रदूषण औद्योगिक क्रांति के बाद धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। अब तो यह इस हद तक बढ़ गया है कि इससे पृथ्वी पर रहने वाले सब प्राणियों के लिए खतरा उत्पन्न

---

1. के. वी. नारायण के लेख 'क्योर दि अर्थ नाउ', दि हिंदू, 17 मई, 1992 से।

हो गया है। प्रदूषण के लिए किसे दोषी माना जाए ? इसमें कोई शक नहीं कि 'मानव और केवल मानव ही' इसके लिए जिम्मेदार है। आदिकाल में मनुष्य की अपने पर्यावरण से पूरी सहभागिता थी, परंतु समय के साथ-साथ पृथ्वी की जनसंख्या इतनी बढ़ गयी जितनी पहले कभी न थी। इसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकी के उपयोग में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई। इस बढ़ती हुई आबादी और तकनीकी विकास के संयोग से ऊर्जा और धरती पर मौजूद कच्चे माल का अत्यधिक उपयोग हुआ है। इसी के फलस्वरूप मनुष्य और उसके आसपास रहने वाले जीवों और वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। न केवल बेशकीमती गैर नवीनीकृत संसाधनों का बेदर्दी से विनाश किया गया है, बल्कि इस प्रक्रिया में पीड़कनाशियों का प्रयोग करके और रेडियोसक्रिय कचरे उत्पन्न करके मनुष्य ने आने वाली पीढ़ियों के लिए अनेक प्रकार के खतरे पैदा कर दिए हैं। इस समय चाहे कोई देश हो या जगह हो, सब तरफ प्रदूषण के बारे में शोर और हाहाकार मचा हुआ है। आखिर यह हाहाकार क्यों ?

प्रदूषण हवा को दूषित करता है और पानी को जहरीला बनाता है। प्रदूषण द्वारा जीवमंडल में विषैले पदार्थ फैलते हैं जो हवा को सांस लेने के अयोग्य बना देते हैं, पानी और मिट्टी की गुणवत्ता को हानि पहुंचाते हैं। इनसे वातावरण में ऐसे पदार्थ छोड़े जाते हैं जिनसे मनुष्य, पौधों और जानवरों के स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के उर्वरकों और पीड़कनाशियों का उपयोग करके कृषि उत्पादन को विस्तार दिया गया है। रसायनों के उत्पादन के लिए अनेक प्रकार के उद्योग लगाए गये हैं। इनमें ऐसे रसायन भी हैं जिनसे सभी प्रकार के जीवों को खतरा होता है। ऊर्जा की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक संख्या में जल विद्युत, तापीय और न्यूक्लियर (परमाणु) बिजलीघर स्थापित किए जा रहे हैं। इन सबका वास्तविक परिणाम होता है सब जगह हवा और पानी का प्रदूषण।

अब अधिक से अधिक संख्या में लोग शहरों में जाकर बसने लगे हैं। इससे शहरों में वायु प्रदूषण काफी बढ़ा है। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार उस समय देश में शहरों की आबादी लगभग 6 करोड़ 20 लाख थी। 1981 की जनगणना में यह 15 करोड़ 80 लाख हो गयी—केवल 30 वर्षों में 150 प्रतिशत की वृद्धि।

तीव्र उद्योगीकरण से वायु की गुणवत्ता खराब हुई है। उद्योगों में कोयले और जीवाश्म ईंधनों और मोटरगाड़ियों में पेट्रोलियम ईंधनों के व्यापक उपयोग

ने वायु प्रदूषण के संकट को और गहरा कर दिया है। ऐसा लगता है कि जैसे हमारा वातावरण एक कचरे का डिब्बा है जिसमें मिट्टी, जहरीला धुआं, जहरीली गैसें और दूसरे अन्य प्रदूषक बेदर्दी से फेंके जाते हैं। रूस में लियो टालस्टाय की पूर्व एस्टेट के नजदीक एक रसायन निर्माण समूह वर्षों से हवा में रासायनिक भाप और धुआं छोड़ता रहा है। इसके परिणामस्वरूप इस विख्यात पर्यटन क्षेत्र के बलूत और चीड़ के जंगल नष्ट हो रहे हैं।

भारत भी वायु प्रदूषण से मुक्त नहीं है, हालांकि हमारे देश में पश्चिमी देशों की तुलना में वाहनों की संख्या अभी काफी कम है। हमारे शहरों में वायु प्रदूषण की तीव्रता बढ़ रही है और अब हमारे शहरों का प्रदूषण लंदन अथवा न्यूयार्क से कम खतरनाक नहीं है। हमारे शहरों में वायु प्रदूषण में वृद्धि का प्रमुख कारण है पुराने वाहन और उनकी घटिया कार्यक्षमता। यह बताया गया है कि मुख्य रूप से बढ़ते हुए वायु प्रदूषण के कारण बृहत्तर कलकत्ता के लगभग 25 प्रतिशत छात्रों को क्षयरोग का खतरा बना हुआ है।

जनसंख्या में वृद्धि तथा साथ ही उद्योगों के बढ़ने से जल प्रदूषण भी काफी बढ़ा है (नवीनतम जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या लगभग 85 करोड़ है और अनुमान है कि शताब्दी के अंत तक यह अरब की संख्या पार कर जाएगी)। जब से मल-जल और उद्योगों का कचरा नदियों में बहाया जाने लगा है तब से जल प्रदूषण खतरनाक रूप लेता जा रहा है।

जो नदियां पहले पवित्र मानी जाती थीं वे अब गंदी और बदबूदार हो गयी हैं। यह बहुत दुखद है कि हमारे देश की तीन चौथाई आबादी गंदा पानी पीने को विवश है। बिना सोचे-समझे नदियों में मल-जल और औद्योगिक कचरा बहाने से न केवल मानव जीवन के लिए खतरा पैदा हो गया है बल्कि यह पानी में रहने वाले अनेक प्रकार के जीवों के लिए भी चिंता का विषय है। जल प्रदूषण के कारण फ्रांस और इटली की नदियों का गहरे नीले रंग का चमकता साफ पानी अब नजर नहीं आता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार अब तो भूमध्य सागर का पानी भी मटमैला होता जा रहा है। नदियां और नाले मल-जल, डिटरजैंट और औद्योगिक कचरा सागर में डालते हैं, टैंकर अपनी गंदगी नदी या सागर में गिरा देते हैं। बोतलें, सड़ा हुआ कूड़ा और तेल की परत भी समुद्र के तटों पर बहा दी जाती है। भारतीय सागर तट अभी भी दूसरे देशों के सागर तटों की तुलना में उतने अधिक गंदे नहीं हैं।

खेती के आधुनिक तरीकों और नयी प्रौद्योगिकी ने एक अन्य प्रकार के प्रदूषण को जन्म दिया है। खेतों में अत्यधिक मात्रा में अकार्बनिक उर्वरकों—नाइट्रोजन,

फास्फेट और पोटाश—का प्रयोग किया जाता है। ये फास्फेट और नाइट्रेट झीलों और नदियों के मुहानों में जमा हो जाते हैं। इनके फलस्वरूप उन स्थानों पर काफी अधिक मात्रा में शैवाल उग आती है। इससे दूर-दूर तक पानी शैवालों से भर जाता है, पौधे सड़ जाते हैं और पानी की सारी आक्सीजन समाप्त हो जाने से मछलियां मर जाती हैं।

उर्वरकों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पीड़कनाशियों, कीटनाशियों और खरपतवारनाशियों का भी प्रयोग किया जाता है। ये पदार्थ सतह के पानी और भूमिगत पानी दोनों को गंदा कर देते हैं। इनमें से कुछ पदार्थ हवा, बारिश और नदियों द्वारा दूरदराज के क्षेत्रों तक बहा ले जाए जाते हैं। ये पदार्थ ऊंचे पर्वतों और सागर तट के दलदल में भी पाए जाते हैं तथा मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों और मछलियों के लिए खतरनाक साबित हो रहे हैं।

यह पता चला है कि रूस के एक विशिष्ट क्षेत्र में फेफड़ों का कैंसर 50 प्रतिशत बढ़ गया है, पेट के कैंसर की दर 30 प्रतिशत बढ़ गयी है और बच्चों में जन्मजात दोष 55 प्रतिशत बढ़ गये हैं—वस्तुतः इन सबका कारण है पीड़कनाशियों का अत्यधिक उपयोग।

हाल ही में एक अन्य प्रकार का प्रदूषण चर्चा का विषय बना है—यह है विकिरण जो परमाणु बिजलीघरों और परमाणु शस्त्रों में वृद्धि का परिणाम है। रेडियोसक्रिय पदार्थ वातावरण और पानी में पहुंच कर उत्परिवर्तनजनक प्रभाव[2] डालते हैं। अभी चालू परमाणु बिजलीघरों की संख्या काफी कम है और वे तुलनात्मक रूप से काफी सुरक्षित भी समझे जाते हैं परंतु ये बहुत भयानक पर्यावरणी और स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकते हैं।

एक कार्य जिससे हमारे हरे-भरे जंगलों को खतरा उत्पन्न हो जाता है, वह है खनन। विशेष रूप से सुरक्षित जंगलों और अभ्यारण्यों में खनन के कामों से पर्यावरण को गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। उदाहरण के लिए राजस्थान की अरावली पहाड़ियों में स्थित सरिसका शरण-स्थल जो विश्व भर में बाघों के लिए विख्यात है, आजकल खदानों से निकले कूड़े-कचरे का जमावस्थल बन गया है। परिणामस्वरूप यहां बाघ सहित सभी प्रकार के जंतु वस्तुतः अपने अस्तिव के लिए लड़ रहे हैं।

अंत में शोर जनित प्रदूषण का उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है।

---

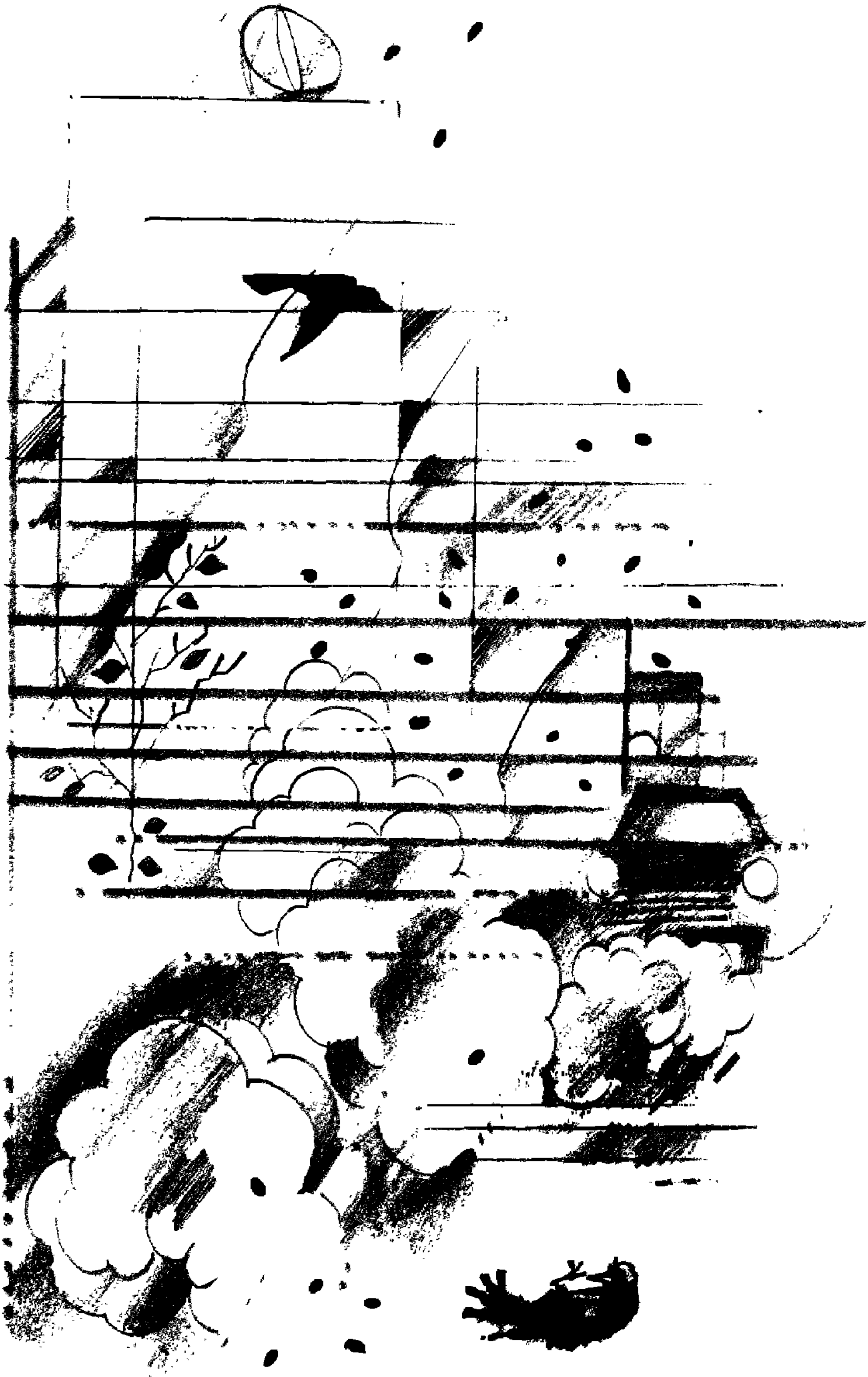
2. उत्परिवर्तन कोशिकाओं के क्रोमोजोम्स में अचानक होने वाले वे अनुवांशिक परिवर्तन हैं जिन्हें आने वाली पीढ़ियां अपने मां-बाप से प्राप्त करती हैं।

वाहनों की बढ़ती हुई भीड़, उद्योगों का चलना और आधुनिक सभ्यता–इन सबने मिलकर शोर प्रदूषण को जन्म दिया है जिससे हमारी सुनने की क्षमता घट सकती है। सिंगापुर में शोर ने अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक तनावों को जन्म दिया है। भीड़भाड़ वाले अपार्टमेंटों में आत्महत्या और पागलपन के दौरों के लिए अक्सर पड़ोसियों के रेडियो, निर्माण कार्य में लगी मशीनों और यातायात के शोर को जिम्मेदार माना जाता है। अतः अब वह दिन दूर नहीं जब भारत में भी ऐसी ही परिस्थितियां उत्पन्न हो जायेंगी।

प्रदूषण का सबसे प्रमुख कारण है बढ़ती हुई आबादी। 1972 में विश्व की जनसंख्या 3.2 अरब थी जो 1992 में 5.2 अरब की संख्या पार कर गयी। केवल 20 वर्षों में जनसंख्या में 2.4 अरब की वृद्धि से संसाधनों में बहुत तेजी से कमी आई है और कूड़ा कचरा काफी अधिक बढ़ा है। विश्व की तेजी से बढ़ती आबादी के कारण बिगड़ते पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कार्यालय की रिपोर्ट के अनुसार "इतनी तेजी से बढ़ती हुई आबादी के लिए भोजन, पानी, खनिज पदार्थ, ईंधन तथा अन्य आवश्यक पदार्थ उपलब्ध कराने की आवश्यकता से पृथ्वी के लगभग सभी क्षेत्रों पर दबाव बढ़ेगा। इसके फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए सबसे अधिक सावधानीपूर्वक नियोजन और प्रबंधन की जरूरत होगी। विश्व स्तर के इन दबावों से कोई भी राष्ट्र बच नहीं पाएगा।"

इतने तरह के प्रदूषणों से घिरा रहने के बावजूद मनुष्य उन पर बिना विचारे जिए जा रहा है। प्रदूषण उस बाघ के समान है जो घात लगाए झाड़ी में छिपा बैठा है और कभी भी हम पर हमला करके सब कुछ तहस-नहस कर सकता है। यह हमारे सिर पर लटकी हुई दोधारी तलवार की तरह है। मनुष्य स्वयं ही आत्महत्या के रास्ते पर चल रहा है–उसकी पिस्तौल प्रदूषण है।

हमने हवा, पानी और मिट्टी सबको प्रदूषकों से जहरीला बना दिया है। हमने "महान जीवन श्रृंखला" नाम की जटिल प्रणाली में अपने अस्तित्व को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक समुदायों को तितर-बितर कर दिया है। हम शीघ्र ही धरती, वातावरण और समुद्रों के प्राकृतिक बलों के संतुलन को इतना बिगाड़ देंगे कि वह मानवता के लिए बहुत अधिक खतरनाक हो सकता है। हम अब उस मुकाम पर पहुंच गये हैं जहां हमें स्वयं को बचाने के लिए पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना होगा।



2

प्रदूषित हवा–हर सांस में

''मनुष्य सदियों से अपनी धरती को बचाने के लिए अरस्तू और डारविन जैसे मनीषियों द्वारा दी गयी दलीलों को अनसुना करता आया है। परंतु अब उन्हें सुनने का वक्त आ गया है। वायु प्रदूषण की स्थिति कभी भी इतनी बुरी न थी जितनी कि अब है। औद्योगिक प्रगति से हालांकि हमें काफी लाभ हैं, लेकिन हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जिस हवा में हम सांस ले रहे हैं वह दूषित न हो।''

—फ्लैक्ट[3]

हममें से कोई भी 3 दिसंबर 1984, को भोपाल में हुई उस भयानक औद्योगिक दुर्घटना को नहीं भुला सकता। यूनियन कारबाईड द्वारा संचालित संयंत्र से निकली प्राणघातक गैस वातावरण में फैल गयी, और वहां के 4000 निवासियों को मौत की नींद सुला दिया और शहर के जीवित बचे बहुत सारे लोगों को अंधा व अपंग कर दिया। भोपाल में ही नहीं अब तो हर शहर, हर प्रांत, और धरती के हर हिस्से में इस तरह की गंभीर समस्या का खतरा मंडरा रहा है। हर रोज, हर पल हम प्रदूषित हवा में सांस लेते हैं और वायु प्रदूषण का शिकार हो रहे हैं।

मनुष्य खाने के बिना एक महीना जी सकता है, पानी के बिना दो-तीन दिन परंतु सांस लिए बिना वह एक मिनट भी जिंदा नहीं रह सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक वयस्क व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 1.5 किलोग्राम खाना खाता है और लगभग 2.5 किलोग्राम पानी पीता है। परंतु इसकी तुलना में वह सांस लेकर प्रतिदिन लगभग 15 किलोग्राम वायु का आदान-प्रदान करता

---

3. फ्लैक्ट इंडिया लिमिटेड, कलकत्ता के सौजन्य से।

है। इसलिए यह निश्चित है कि प्रदूषित पानी या संदूषित भोजन की तुलना में प्रतिदिन सांस लेने के साथ हमारे शरीर में पहुंचने वाले प्रदूषकों की मात्रा कई गुणा अधिक होती है।

हवा कई गैसों का मिश्रण है। इसमें 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत आक्सीजन, 1 प्रतिशत से थोड़ा कम आरगन और 0.03 प्रतिशत कार्बन डाईआक्साइड होती है। शुष्क वायु में कुल मिलाकर इन तत्वों का हिस्सा 99. 9 प्रतिशत होता है। जब तक हवा में इन गैसों का प्रतिशत इतना ही रहता है, तब तक हवा साफ और ताजी रहती है। यदि यह अनुपात बदल जाए, जैसे कि आक्सीजन की मात्रा घट जाए अथवा प्रदाह उत्पन्न करने वाली गैसें वातावरण में प्रवेश कर जाएं, तब हवा को प्रदूषित हवा कहते हैं और इस प्रदूषित हवा में सांस लेने से श्वसन संबंधी बीमारियां हो सकती हैं।

नयी-नयी प्रौद्योगिकियों के प्रसार के कारण पैदा होने वाले उत्पादों से हमारी हवा भी जहरीली होती जा रही है। वायु प्रदूषण कोई नयी बात नहीं है, परंतु वायु प्रदूषण का प्रसार और उसकी भयावहता ही नया मुद्दा है।

आजकल शहरी क्षेत्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक उद्योग स्थापित हुए हैं। इनमें से अधिकांश उद्योग चिमनियों से गहरा धुआं उगलते हैं। यह धुआं किन चीजों से बना होता है और कैसे पैदा होता है ? उद्योगों को भाप की जरूरत होती है जिसे तैयार करने के लिए कई प्रकार के ईंधन जैसे कोयला, कोक, भट्टी का तेल जलाए जाते हैं। इन्हें जलाने से गर्मी के साथ-साथ धुआं भी उत्पन्न होता है। धुएं का रंग और उसकी मात्रा जलाए जाने वाले ईंधन और उसकी मात्रा पर निर्भर करते हैं। यह धुआं कहां जाता है ? दिखने में तो यह जल्दी ही गायब हो जाता है, मगर वास्तव में यह कभी गायब नहीं होता है। इसके विपरीत यह वातावरण में हवा में घुल-मिल जाता है और उसे प्रदूषित कर देता है। जहरीली गैसों, राख और मिट्टी के कणों से युक्त इस दूषित हवा में हम सांस लेते हैं और अनजाने में ही हमारे फेफड़ों में धीरे-धीरे ये प्रदूषक तत्व इकट्ठे होते जाते हैं।

उद्योगों में सबसे अधिक धुआं और राख ताप बिजलीघरों से निकलती है। उदाहरण के लिए एक 500 मैगावाट के ताप बिजलीघर से हर रोज धुएं के साथ-साथ 2000 टन राख निकलती है। इसके अतिरिक्त वायु प्रदूषण को बढ़ावा देने वाले और महत्वपूर्ण उद्योग हैं सीमेंट, स्टील तथा खनिज अयस्कों का संसाधन करने वाले उद्योग। कुछ रासायनिक उद्योग भी धुएं के साथ-साथ जहरीली गैसें हवा में छोड़ते हैं।

मोटरवाहनों से निकलने वाला धुआं भी उद्योगों से निकलनेवाले धुएं से कम खतरनाक नहीं है। एक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिदिन अकेले ग्रेटर कलकत्ता में ही मोटर वाहनों से लगभग 1500 टन प्रदूषित पदार्थ वातावरण में छोड़े जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि कलकत्ता का हर नागरिक, चाहे वह धूम्रपान करता हो अथवा नहीं, प्रतिदिन दो पैकेट सिगरेट पीने के बराबर जहरीले पदार्थ सांस द्वारा शरीर में लेने के लिए मजबूर है। बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए दिन प्रतिदिन सड़कों पर चलने वाली बसों तथा भार ढोने वाली लारियों एवं अन्य मालवाहकों की संख्या बढ़ती जा रही है। भारी वाहनों के साथ-साथ कार, जीप, तथा दुपहिया मोटरसाइकिल, स्कूटर, मोपेड आदि की संख्या भी काफी बढ़ी है—वायु को प्रदूषित करने में इन सबकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

नीचे दिए गये आंकड़े आपको काफी रोचक तथा आश्चर्यचकित कर देने वाले लगेंगे। ग्रेटर मुंबई में अनुमानतः 6.3 लाख वाहन हैं जो हर रोज करीब 1540 टन प्रदूषित पदार्थ वातावरण में छोड़ते हैं। दिल्ली में 1992 में वाहनों की संख्या लगभग 19 लाख थी, चेन्नई शहर में लगभग 5 लाख मोटरगाड़ियां सड़कों पर दौड़ती हैं। हैदराबाद में अनुमानतः लगभग 4.7 लाख मोटरगाड़ियां हर रोज 450 टन धुआं और जहरीली गैसें वातावरण में छोड़ती हैं।

हाल ही में किए गये एक सर्वेक्षण से यह संकेत मिलता है कि सन् 2000 तक देश में दुपहिया वाहनों की संख्या 5 करोड़ तक पहुंच जाएगी। मोटरगाड़ियों के धुएं से होने वाला वायु प्रदूषण अब उच्चतम सीमा तक पहुंच गया है और यदि यही स्थिति जारी रही तो हम सबको भविष्य में नाक पर फिल्टर लगाकर चलना पड़ेगा।

दुनिया के दूसरे भागों में मोटर वाहन अभी भी प्रदूषण का बहुत बड़ा स्रोत हैं। वे करीब 60 प्रतिशत वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं जिसकी वजह से मैक्सिको शहर में कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा अमेरिका के पश्चिमी क्षेत्र के लॉस एंजेल्स से अधिक है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के सिडनी शहर में (जिसका वातावरण पहले कभी सबसे स्वच्छ माना जाता था) भी अब मोटर वाहनों के कारण होने वाला प्रदूषण अमेरिका के किसी भी शहर से अधिक है।

महानगरों में आजकल प्रतिदिन हजारों-लाखों टन कूड़ा-कचरा निकलता है। यह कचरा कागज, पैकिंग सामग्री, पोलीथीन की थैलियों, इस्तेमाल किए हुए सैशे (थैलियों), प्लास्टिक की बोतलों, धातुओं के डिब्बों, टूटी-फूटी क्राकरी, सड़ी-गली सब्जियों, कांच के टुकड़ों आदि का होता है। इस कचरे के ढेर को इकट्ठा करना और दूसरी जगह ले जाना एक मुश्किल ही नहीं खर्चीला और श्रमसाध्य कार्य

है। अधिक कचरे को ढोने से बचने के लिए संबंधित स्थानीय निकाय के कर्मचारी उसे गलियों में ही जला देते हैं। चूंकि यह कचरा ठीक से नहीं जलाया जाता, इसलिए जलते समय इसमें से घना धुआं निकलकर वातावरण में फैल जाता है।

खदानों से निकली धूल

पिछले दो दशकों के दौरान रहने के लिए घर और उद्योगों के लिए भवनों का निर्माण कई गुणा बढ़ गया है। इस निर्माण कार्य के लिए आवश्यक पत्थर और सीमेंट को जुटाने के लिए नयी मशीनें लगाई जा रही हैं। कुछ समय पहले तक, भवनों अथवा सड़कों के निर्माण के लिए जिन पत्थरों की जरूरत पड़ती थी उन्हें हाथ से तोड़ा जाता था। इसलिए पहले खदानों की धूल जैसी कोई समस्या नहीं थी। परंतु जैसे-जैसे नयी मशीनों का उपयोग बढ़ा है, हर रोज तोड़े जाने वाले पत्थर की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गयी है। इसी के साथ बढ़ी है इन पत्थरों को तोड़ने से निकलने वाली धूल की मात्रा। यह धूल खदानों से अथवा पत्थर तोड़ने के स्थानों से निकलकर 2 वर्ग किलोमीटर तक के क्षेत्र में फैल जाती है।

शहरों में वायु प्रदूषण

अकेले भारत में प्रतिवर्ष वातावरण में छोड़े जाने वाले वायु प्रदूषकों की विशाल मात्रा (1980 के आकलन के अनुसार) के बारे में जानकर आप आश्चर्यचकित रह जाएंगे। इन प्रदूषकों की मात्रा है—10 लाख टन कार्बन मोनोआक्साइड, 30 लाख टन सल्फर डाईआक्साइड, 2 लाख टन हाइड्रोजन सल्फाइड और 50 लाख टन ठोस कचरा।

यहां भारत के ताप बिजलीघरों के बारे में बताना बहुत जरूरी है जिनकी संख्या इस समय लगभग 66 है और जिनसे प्रतिवर्ष 3 से 4 करोड़ टन अर्थात् प्रतिदिन लगभग एक लाख टन उड़नेवाली राख निकलती है।

डा. बी. बी. सुन्दरेसन (मद्रास यूनिवर्सिटी के भूतपूर्व कुलपति) की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार, भारत के 1 लाख से ज्यादा आबादी वाले 3900 शहरों/कस्बों के निवासियों पर वायु प्रदूषण का असर दिखाई देने लगा है। मुंबई में प्रतिदिन लगभग 2971 टन प्रदूषक पदार्थ वायु को प्रदूषित करते हैं—इनमें से 1357 टन प्रदूषक उद्योगों से उत्सर्जित होते हैं, 1538 टन मोटरवाहनों से निकलते हैं और 62 टन घरेलू धुएं से आते हैं। मुंबई के वातावरण में मौजूद सल्फर (गंधक) की औसत मात्रा सुरक्षित सीमा से दोगुणा है, कुछ क्षेत्रों में तो

यह खतरे की सीमा को पार कर गयी है। मुंबई शहर अब निवास की दृष्टि से अत्यधिक अस्वास्थ्यकर हो गया है।

एन. के. डोवल[4] के शब्दों में दिल्ली के प्रदूषण की सबसे अच्छी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—"दिल्ली के वातावरण में मौजूद वायु इसे विश्व में चौथा सबसे अधिक प्रदूषित शहर होने का दर्जा देती है। इस बढ़ते वायु प्रदूषण का सबसे प्रमुख कारण है मोटरवाहनों की बढ़ती संख्या और कोयले पर आधारित दो ताप बिजलीघर जो शहरी सीमा के अंदर ही स्थापित हैं। दिल्ली के वातावरण में प्रतिदिन उत्सर्जित होने वाले लगभग 2090 टन प्रदूषक तत्वों में से लगभग 1320 टन (60 प्रतिशत) मोटरवाहनों से आते हैं। इसके परिणामस्वरूप दिल्ली की चौड़ी सड़कें प्रदूषकों से भरी रहती हैं। प्रदूषण के परिणामों में सबसे खतरनाक है मोटरवाहनों से निकले धुएं का नीचे जमा हो जाना (विशेष रूप से सर्दियों में) जो श्वसन संबंधी गंभीर विकारों को जन्म देता है।"

कलकत्ता में वायु प्रदूषण की गंभीरता किसी और शहर से किसी भी प्रकार कम नहीं है। कलकत्ता दुनिया के सबसे अधिक प्रदूषित शहरों में से एक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किसी स्थान की वायु में लटके (प्रलंबित) हुए धूल कणों की सर्वाधिक स्वीकार्य सीमा 90 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर होती है। इससे अधिक होने पर गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं जन्म ले सकती हैं। कलकत्ता की वायु में धूलकणों की मात्रा सर्वाधिक—410 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर है। इसकी तुलना में तेहरान में यह मात्रा 360, ऐथन्स में 255 और लंदन में 23 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर है।

चेन्नई उन चार महानगरों में से एक है जो प्रदूषित हवा के परिणामों को भुगत रहा है, यद्यपि इसका सबसे अधिक प्रभाव उत्तरी चेन्नई में दिखाई देता है जहां उद्योगों का जमाव है।

हैदराबाद भी प्रदूषित वायु से बहुत बुरी तरह प्रभावित है जहां धुएं के घने बादल और मोटरवाहनों से निकला धुआं शहर के 194 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में और आसपास के क्षेत्रों में छाया रहता है। यहां मोटरवाहनों से प्रतिदिन लगभग 450 टन प्रदूषक तत्व निकलते हैं जिनसे आसमान हमेशा इतना भूरा रहता है कि इस शहर के निवासी दूरबीन से भी तारों को साफ नहीं देख सकते।

हाल ही की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश के टैक्सटाइल

---

4. एन. के. डोवल 'दि हिंदू' में कॉलम लेखक हैं।

शहर कानपुर में सूती वस्त्रों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध इंग्लैंड के मैनचेस्टर शहर से छः गुणा अधिक प्रदूषण है।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वायु प्रदूषण के विश्वव्यापी प्रभाव के अतिरिक्त मनुष्य के स्वास्थ्य, जानवरों, पौधों और पदार्थों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव

निस्संदेह रूप से यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रदूषित वायु मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक है और इसके कारण होने वाले अनेक रोगों, जैसे फेफड़ों के कैंसर, से मृत्यु भी होती है। वायु प्रदूषण अधिकतर साधारण सर्दी जुकाम से लेकर फेफड़ों के कैंसर जैसे श्वसन संबंधी रोगों को जन्म देता है। गैसीय और धूलिमय दोनों तरह के प्रदूषणकारी पदार्थ श्वसन तंत्र को गंभीर नुकसान पहुंचाकर वातस्फीति[5], श्वसनी शोथ और दमा जैसे रोगों को जन्म देते हैं। प्रदूषित हवा आंखों में चुभती है और कुछ प्रदूषणकारी पदार्थ, जैसे लैड (सीसा) शरीर में जमा हो जाते हैं। कभी-कभी इनकी मात्रा खतरनाक सीमा तक बढ़ जाती है। फेफड़ों के कैंसर की वजह से मृत्यु दर बढ़ रही है और इसका प्रमुख कारण प्रदूषित हवा को माना जा रहा है। यहां यह बताया जा सकता है कि बड़े शहरों में फेफड़ों के कैंसर की दर ग्रामीण क्षेत्रों से दोगुणा है। यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि वायु का असर बड़ों की तुलना में बच्चों पर अधिक होता है।

कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और कुछ प्रकार के अम्ल, एल्डीहाइड और हाइड्रोकार्बन कुछ प्रमुख प्रदूषणकारी पदार्थ हैं। प्रदूषणकारी धूल कणों में प्रमुख हैं धूल, सिलिकामय पदार्थ और एस्बेस्टास।

कार्बन मोनोआक्साइड एक दमघोंटू गैस है। सांस के साथ शरीर में प्रवेश करने पर यह रक्त की हीमोग्लोबिन से क्रिया करके उसकी आक्सीजन ढोने की क्षमता को कम कर देती है। खून की कमी (अल्परक्तता) जैसे रोगों से प्रभावित व्यक्ति इसके अधिक शिकार होते हैं क्योंकि कार्बन मोनोआक्साइड शरीर के महत्वपूर्ण अंगों को गंभीर क्षति पहुंचा सकती है।

सल्फर डाईआक्साइड सबसे खतरनाक और सबसे अधिक व्यापक वायु

5. वातस्फीति (एम्फीसीमा) फेफड़ों के वायु कोष्ठकों के लगातार खराब होते जाने का रोग है।

प्रदूषक है। यह पता चला है कि सल्फर डाईआक्साइड की कम मात्रा श्वसनी की मृदु पेशियों (स्मूथ मसल्स) में अस्थाई मरोड पैदा कर देती है। इसकी अधिक सांद्रता अधिक श्लेष्मा के उत्पादन को प्रेरित करती है। सल्फर डाईआक्साइड उन रोमों को भी प्रभावित करती है जो श्वसन प्रणाली की रक्षा करते हैं। ऐसा करके यह खांसी, जल्दी-जल्दी सांस आने तथा स्वर-यंत्र में ऐंठन जैसे विकारों को जन्म देती है। इससे आंखों में भी तेज जलन होती है जिससे आंखें लाल हो जाती हैं और आंसू बहते हैं।

नाइट्रोजन के आक्साइड फुप्फुस तंत्र में प्रदाह उत्पन्न करते हैं। इनकी सांद्रता अधिक होने पर फेफड़ों से रक्तस्राव हो सकता है।

हाइड्रोजन सल्फाइड तो सड़े अंडे जैसी बदबू से पहचानी जाती है। मोटर वाहनों से निकले हाइड्रोकार्बन फेफड़ों के कैंसर को जन्म देते हैं। मोटरवाहनों के धुएं से उत्सर्जित होने वाला सीसा इकट्ठा होता जाने वाला जहर है। यह बच्चों के मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त कर देता है। यह सीसा लाल रक्त कोशिकाओं के विकास और उनके परिपक्व होने में बाधा डालता है। यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि धूम्रपान न करने वालों की तुलना में धूम्रपान करने वालों के रक्त में सीसे की मात्रा अधिक होती है।

धूलकण जैसे प्रदूषणकारी पदार्थों में एस्बेस्टास का विशेष उल्लेख आवश्यक है। पिछले 30 वर्षों में एस्बेस्टास का उपयोग कई गुणा बढ़ गया है। भवनों में छतें बनाने के लिए और वाहनों में ब्रेक तथा क्लच के किनारों को ऊष्मारोधी बनाने के लिए एस्बेस्टास का प्रयोग किया जाता है, और हवा में भी एस्बेस्टास की मात्रा बढ़ गयी है। एस्बेस्टास का जमा होना एस्बेस्टोसिस जैसी भयंकर बीमारी को जन्म देता है।

धूल कणों से युक्त प्रदूषित वायु से होने वाली दूसरी भयानक बीमारी है सिलिकोसिस अथवा सिकतामयता। यह धूल से जुड़ी हुई आम बीमारी है। यह बीमारी सांस के साथ स्फटिकमय धूल कण अथवा दूसरी सिलिका युक्त चट्टानों से निकले धूलकणों के फेफड़ों में पहुंचने से होती है। खनन, पौटरी उद्योग, सिरेमिक्स, ग्रेनाईट की कटाई और बालू की खुदाई जैसे उद्योगों से जुड़े श्रमिकों में यह बीमारी होने का खतरा सबसे अधिक होता है, जिसका शुरू-शुरू में तो पता नहीं चलता है परंतु धीरे-धीरे खांसी और सांस उखड़ने जैसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं। सिलिकोसिस के साथ अक्सर क्षयरोग भी हो जाता है। यह बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और अंत में हृदय गति रुकने अथवा क्षयरोग से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

धूल से होने वाली अन्य गंभीर बीमारियां हैं फेफड़ों को अवरुद्ध करने वाली बीमारी (कोयले की धूल सांस के साथ शरीर में प्रवेश करने पर), बेरिलियोसिस (बेरिलियम धूल से), और कार्पसता अथवा बाइसीनोसिस (कपास की धूल से)।

संदर्भ के लिए प्रदूषकों और मानव स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव को संक्षेप में सारणी-1 में दिया गया है।

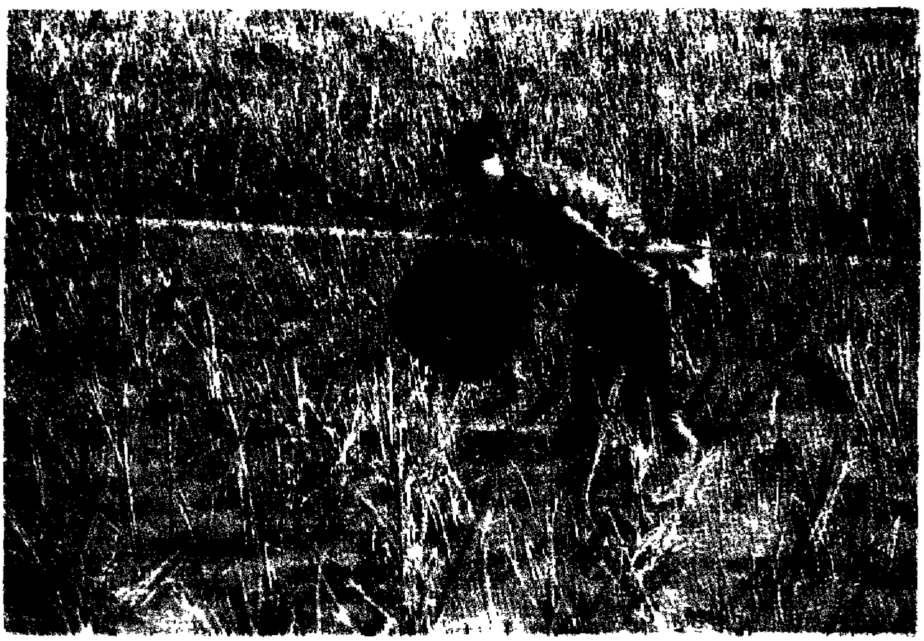
सारणी-1

प्रमुख वायु प्रदूषक और मानव स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव

क्रमांक	*प्रदूषक*	*प्रदूषकों की उत्पत्ति*	*प्रभाव*
1.	सल्फर डाईआक्साइड	उद्योगों से, विशेषकर जहां कोयला और तेल जलाया जाता हो।	आंखों और श्वसन प्रणाली में प्रवाह। श्लेष्मा का अधिक उत्पादन, खांसी और सांस का उखड़ना
2.	कार्बन मोनोआक्साइड	प्रमुख रूप से मोटर वाहनों के धुएं और उद्योगों के धुएं से	खून की आक्सीजन ढोने की क्षमता की कमी
3.	नाइट्रोजन के आक्साइड	वाहनों के धुएं से	फुप्फुस प्रदाहक, जिससे फेफड़ों की कार्यक्षमता पर प्रभाव
4.	हाइड्रोकार्बन	मोटर वाहनों के धुएं से	फेफड़ों का कैंसर
5.	क्लोरीन	क्लोरालकली उद्योग	श्लेष्मा झिल्ली के प्रदाह
6.	अमोनिया	उर्वरक उद्योग और उर्वरकों का इस्तेमाल, और मुर्गी पालन के कारण	श्लेष्मा झिल्ली के प्रदाह
7.	हाइड्रोजन सल्फाइड	कोक के निर्माण में, विस्कोस धागों के निर्माण चारकोल और पेट्रोलियम के डिस्टिलेशन	बीमारी तथा अधिक मात्रा में सांस के साथ शरीर में पहुंचने पर मृत्यु
8.	अम्ल और एल्डीहाइड्स	रसायन उद्योग	आंख, नाक और गले में जलन
9.	वातावरण में लटके धूलकण	उद्योगों, मोटरवाहनों के धुएं से	सांस संबंधी रोग
10.	धूल	उद्योग और मोटर वाहनों के धुएं से	सिलिकोसिस (सिकतामयता)



प्लेट 1 : जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि से पर्यावरण बिगड़ता है।



प्लेट 2 : पीड़कनाशियों के प्रयोग के बिना धान की खेती करने से जलीय जीवों की संख्या में वृद्धि होती है



प्लेट ३ : पीड़कनाशियों से विषाक्त तरबूज।



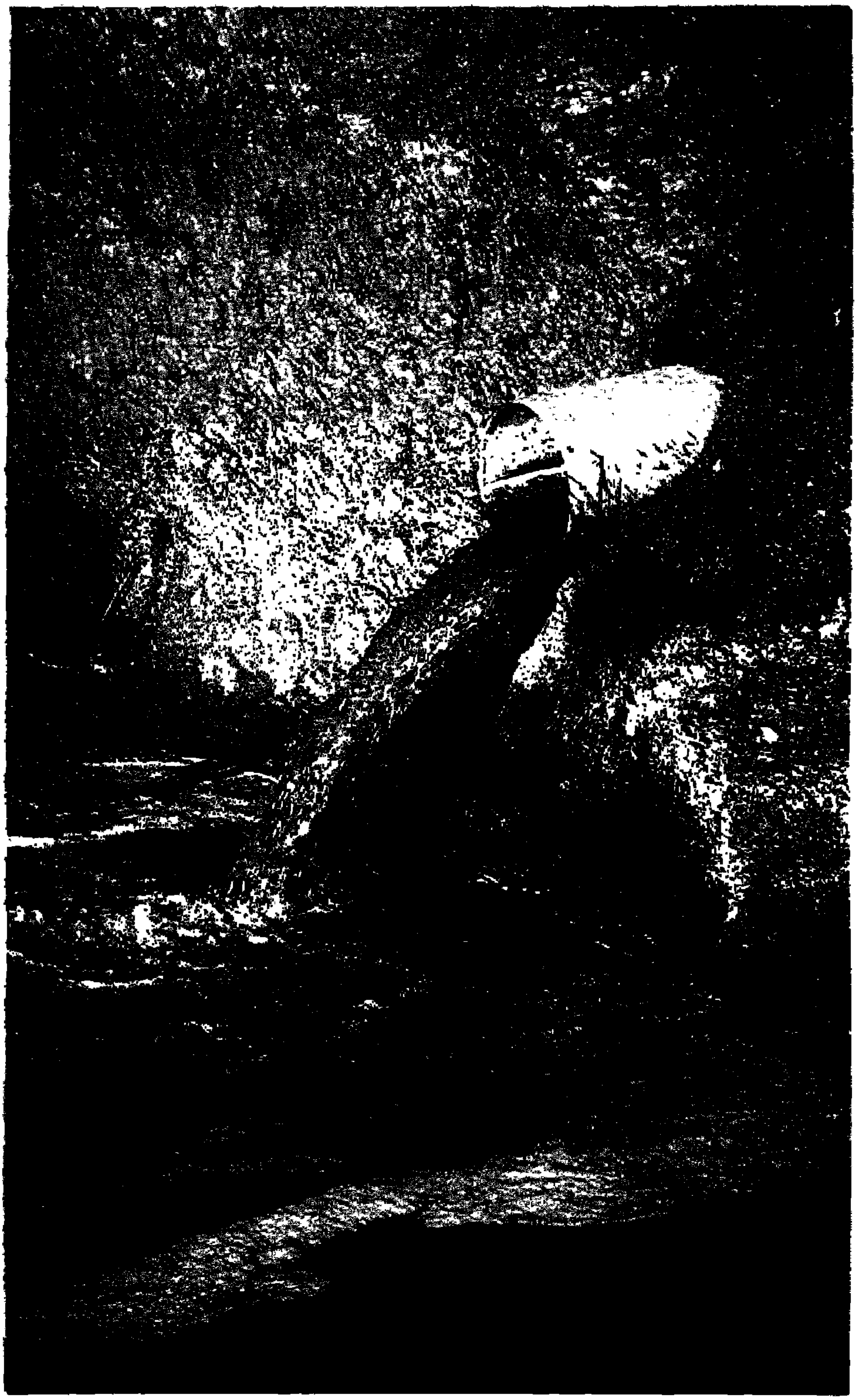
प्लेट 4 : नदियों में कपड़े धोने से नदियों का प्रदूषण।



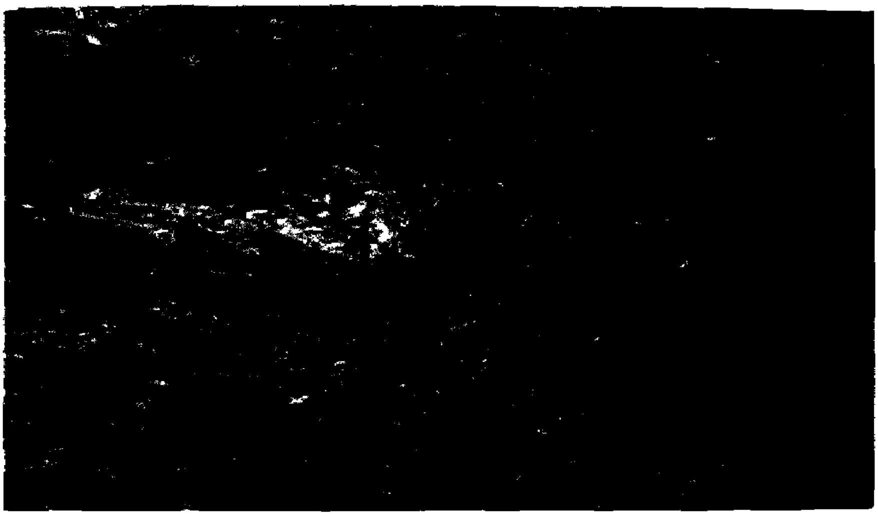
प्लेट 5 : भूमिगत और सतही जल का प्रदूषण बहुत खतरनाक होता है (ग्रीन पीस कम्युनिकेशंस लिमिटेड लंदन के सौजन्य से)।



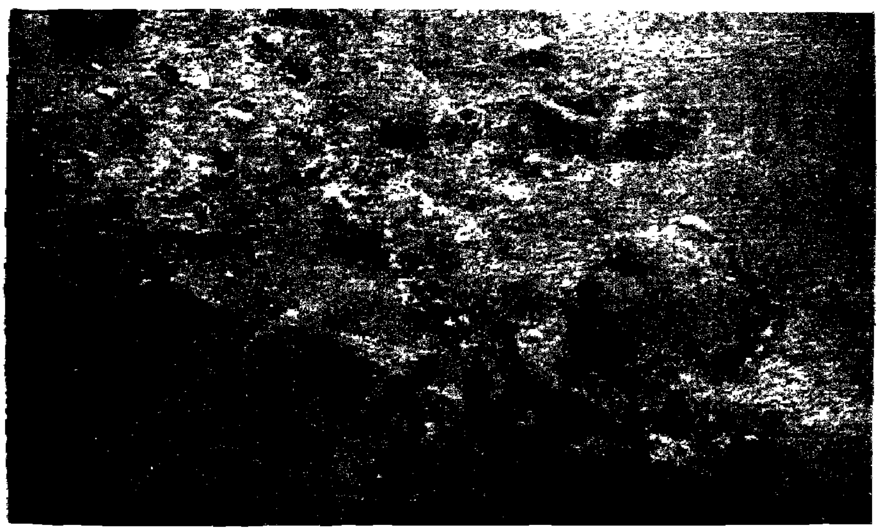
प्लेट 6 : एक्वस नेग्रास नदी में गिराया जा रहा मल-जल एवं औद्योगिक कचरा (ग्रीन पीस कम्युनिकेशन्स लिमिटेड, लंदन के सौजन्य से)।



प्लेट 7 : कागज मिलों का अपशिष्ट जल गन्ने के खेतों में छोड़ा जा रहा है।



प्लेट 8 : समुद्र में तेल की परत समुद्री जल को प्रदूषित करती है।



प्लेट 9 : तेल से भरी हुई लहरें अरब सागर के तटों पर थपेड़े मारती हैं।



प्लेट 10 : समुद्र में फैले तेल का शिकार एक पक्षी ।



प्लेट 11 : कूड़े-कचरे के ढेर पक्षियों के प्रजनन स्थल बन जाते हैं।



प्लेट 12 : दूर-दराज के क्षेत्रों में घरों से निकाले गए बेकार डब्बों का ढेर।



प्लेट 13 : बेतरतीबी से फेंके गए कूड़े का ढेर।



प्लेट 14 : जंगलों के विनाश के बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं।



प्लेट 15 : पेड़ों को कटने से बचाने के लिए 'आपिको' आंदोलन।

11. एस्बेस्टास	छतों के निर्माण, ब्रेकों के किनारों से	एस्बेस्टोसिस; श्रमिकों के लिए कैंसर जनक धीरे-धीरे इकट्ठा होने वाला जहर
12. लैड (सीसा)	मोटर वाहनों के धुएं से	केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव
13. बैरीलियम	वायुयान उद्योग; घर में उपयोग में आने वाले उपकरणों के निर्माण	जानलेवा फेफड़ों के रोग; हृदय और फेफड़ों की विषाक्तता।
14. मैंगनीज	खदान के कार्यों के दौरान	तंत्रिकाओं और प्रजनन तंत्र की क्षति
15. बेंजीन	मोटरगाड़ियों के धुएं और रसायनों के निर्माण के दौरान	रक्त कैंसर और क्रोमोसोम को क्षति
16. पीड़कनाशियों	पीड़कनाशियों का निर्माण और प्रयोग	यदि सांस के साथ अधिक मात्रा शरीर में चले जाएं तो मृत्यु का कारण बन सकते हैं; उदासीनता उत्पन्न करते हैं।

जानवरों पर प्रभाव

पालतू पशुओं पर वायु प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य पर उनके प्रभाव के समान ही होता है। यह बताया गया है कि 1952 में लंदन में हुई कुहरा दुर्घटना में 5 गाएं मर गयीं थी और 351 में से 52 गंभीर रूय से बीमार हो गयी थीं। इसी प्रकार मैक्सिको के पोजारिका शहर में हाइड्रोजन सल्फाइड के प्रभाव से अज्ञात संख्या में गाएं, सुअर, कुत्ते, मुर्गियां और कनारी चिड़ियां या तो मर गयी थीं अथवा बीमार हो गईं थीं। डोनोरा (अमेरिका) की औद्योगिक दुर्घटना की रिपोर्ट से पता चलता है कि उस औद्योगिक हादसे में 20 प्रतिशत कनारी चिड़ियां तथा 15 प्रतिशत कुत्ते प्रभावित हुए थे।

गाय-बैलों, भेड़ों और घोड़ों में सीसा-विषाक्तता बहुत आम है। सड़कों के किनारे के घास के मैदानों में काफी मात्रा में सीसा जमा होता है और जो जानवर इन घासों को चरते हैं उनके ऊत्तकों में सीसा जमा हो जाता है और उन्हें सीसा-विषाक्तता हो जाती है। प्रगलकों के आसपास चरने वाली गायों के शरीर में सांस के साथ सीसा भी पहुंचता है। ऐसी सीसा-विषाक्तता की उग्र अवस्था में तंत्रिका तंत्र के प्रभावित हो जाने के कारण जानवरों को मरते भी देखा गया

है। साधारण सीसा-विषाक्तता में जानवर सुस्त हो जाते हैं, उन्हें भूख नहीं लगती है और दस्त भी लग जाते हैं।

ओजोन युक्त वायु प्रदाहक का काम करती है जिसकी वजह से कुत्तों, बिल्लियों और खरगोशों में फेफड़ों में परिवर्तन, सूजन और रक्तस्राव हो जाता है।

फ्लुओराइड दूसरा आम प्रदूषणकारी तत्व है। हालांकि हवा में मौजूद फ्लुओराइड जानवरों को सीधे प्रभावित नहीं करता है, परंतु जब वे फ्लुओराइड युक्त फसलों को लगातार खाते हैं, तब उनमें फ्लुओरोसिस के कारण कृंतक दांतों पर रंग-बिरंगे चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमें छेद हो जाते हैं। गाय-भैंस और भेड़ें फ्लुओरोसिस से अधिक प्रभावित होती हैं जबकि घोड़े और मुर्गियां काफी हद तक फ्लुओराइड के प्रभाव को सहन कर जाते हैं। चूंकि फ्लोरीन जीव द्रव्य का विष है, अतः यह दांतों की बाहरी चमकदार सतह (इनेमल) को कमजोर कर देता है। फ्लौरीन की अधिक मात्रा से हड्डियों की वृद्धि असामान्य हो जाती है। फ्लुओराइड की अधिकता के कारण जानवरों की हड्डियों में विक्षतियां भी पाइ गयी हैं। फ्लुओराइड प्रदूषण के कारण दस्त लगना, वजन घटना, प्रजनन क्षमता और दूध इत्यादि में कमी जैसे प्रभाव भी देखे गये हैं।

पौधों पर प्रभाव

पौधों पर वायु प्रदूषण का प्रभाव सीधे उनके पत्तों और तने पर होता है। जड़ों के माध्यम से प्रदूषकों से अम्लीकृत ठोस पदार्थों के अवशोषित होने पर पौधों पर प्रदूषण का परोक्ष प्रभाव होता है। वे पौधों को हानि पहुंचाने वाले पाला और सूखा जैसे अन्य कारकों से क्रिया करके उनके प्रभाव को और गंभीर कर देते हैं। पता चला है कि जापान के शाही महल के उद्यान में पेड़-पौधे सूख रहे हैं। चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के उत्तरी बोहीमिया में भूरी-कोयला क्षेत्र की प्रदूषित वायु से आसपास की फसलें सूख गयी हैं और जंगलों को भी भारी क्षति हुई है।

किसानों के लिए तीन प्रदूषणकारी तत्व सबसे अधिक चिंता का विषय हैं। ये हैं सल्फर डाईआक्साइड, फ्लोरीन के यौगिक और धुंध। पत्तियों के पर्णमध्यक में उपस्थित रंध्र सल्फर डाईआक्साइड को अवशोषित करते हैं। जब अवशोषण एक निश्चित सीमा को पार कर जाता है, तब कोशिकाएं काम करना बंद कर देती हैं और मर जाती हैं, जिसकी वजह से उस स्थान के ऊत्तकों का

क्षय हो जाता है और पत्तियां सूख जाती हैं। यदि केवल कुछ ही कोशिकाएं प्रभावित हुई हों तो पत्ती का वही हिस्सा भूरे लाल रंग का हो जाता है अथवा उसका मूल हरा रंग उड़ जाता है। इस प्रभाव को क्लोरोसिस कहते हैं। कपास, गेहूं, जौ और सेब जैसे कुछ पौधों पर सल्फर डाईआक्साइड का प्रभाव अधिक होता है। सल्फर डाईआक्साइड पौधों में श्वसन तथा प्रकाश संश्लेषण में भी बाधा डालती है।

फ्लुओराइड की अधिकता के कारण पौधों पर कभी-कभी विक्षतियां भी देखी गयी हैं। फ्लुओराइड के धूल कण और गैसीय फ्लुओराइड पौधों की पत्तियों पर जमा हो जाते हैं। कभी-कभी पत्तियों की भीतरी और बाहरी सतह पर इनकी मात्रा 30-50 पी पी एम[6] से भी अधिक हो जाती है। वायु में उपस्थित फ्लुओराइड से सेब, खूबानी, अंजीर, आडू, आलू बुखारा जैसे और नींबू कुल के फल देने वाले पौधों की पत्तियां क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। फ्लुओराइड भी पौधों की श्वसन और प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में बाधा डालते हैं।

धुंध भी पौधों को नुकसान पहुंचाती है। ओजोन, परआक्सीएसाइल नाइट्रेट तथा अन्य प्रकाश-रसायनी आक्सीकारकों से भरी धुंध पौधों को जल्दी परिपक्व करके उन्हें जल्दी मार देती है।

कुछ पेड़ों के पत्ते जब ओजोन से भरी हवा के संपर्क में आते हैं तब पत्तों की ऊपरी सतह पर चकत्ते पड़ जाते हैं। अंगूर, नींबू कुल और तंबाकू के पौधों पर ओजोन के कारण उत्पन्न धब्बे देखे जा सकते हैं।

कई अन्य गैसीय प्रदूषक भी पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। क्लोरीन सल्फर डाईआक्साइड से लगभग तीन गुणा अधिक विषाक्त है। अमोनिया और हाइड्रोजन सल्फाइड भी पौधों के लिए विषाक्त है।

वायु प्रदूषण के प्रभाव पर अध्ययन से वायु प्रदूषकों की रासायनिक प्रकृति पर जानकारी प्राप्त होती है। वह दिन अब दूर नहीं जब कुछ पादप प्रजातियों को प्रदूषकों के प्रभाव के अलार्म सिग्नल के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। ये पौधे मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रदूषक के प्रभाव के चिकित्सीय लक्षण दिखाई देने से पहले ही चेतावनी का संकेत दे देंगे। पौधों की एंजाइम प्रणाली पर वायु प्रदूषण के प्रभाव का अध्ययन करने से मनुष्य की एंजाइम प्रणाली और उस प्रदूषकों के संभावित प्रभाव की जानकारी प्राप्त होती है

---

6. पी पी एम—10 लाख अंश में एक अंश।

पदार्थों पर प्रभाव

सल्फर डाईआक्साइड, धुआं, बालू के कण और धूल जैसे वायु प्रदूषक सम्पत्ति और पदार्थों को नुकसान पहुंचाते हैं। सल्फर डाईआक्साइड गैसीय प्रदूषकों में सबसे ज्यादा खतरनाक है। नमी की उपस्थिति में सल्फर डाईआक्साइड सल्फ्यूरिक अम्ल अथवा गंधक के तेजाब में बदल जाती है जो सबसे अधिक क्षयकारी है, विशेषरूप से बिल्डिंगों के लिए क्योंकि यह उनके निर्माण में प्रयुक्त चूने के पत्थर के साथ आसानी से क्रिया करता है। गंधक का तेजाब चूने के पत्थर से क्रिया करके कैल्शियम सल्फेट बनाता है। इस तरह बरसात से प्रभावित क्षेत्रों में परत-पर-परत झड़ते हुए धीरे-धीरे चूने का पत्थर नष्ट होता जाता है।

काले धुएं में मौजूद कालिख भी इमारतों पर जम कर उन्हें खत्म कर देती है। इमारतों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पेंट में मौजूद सीसे के साथ क्रिया करके हाइड्रोजन सल्फाइड लैड सल्फाइड बनाती है जिसकी वजह से इमारतें भूरी-काली नजर आने लगती हैं।

प्रदूषित वायु ने तो अमर प्यार के प्रतीक स्मारक ताजमहल को भी नहीं छोड़ा है। आगरा के नजदीक मथुरा में स्थित तेल शोधक कारखाने से निकले धुएं से उसके क्षतिग्रस्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

विश्वव्यापी प्रभाव

दूसरे प्रदूषणों से विपरीत, वायु प्रदूषण जलवायु को भी प्रभावित करता है। दिन प्रतिदिन पृथ्वी अधिक गर्म हो रही है। औद्योगिक युग के प्रारंभ होने से पहले की तुलना में इस समय विश्व का तापमान 0.6^0 से. अधिक है और पृथ्वी के गरमाने की यह दर इस सदी के अंत तक और बढ़ सकती है। पृथ्वी के गर्म होने से ग्रीन हाउस प्रभाव तथा ओजोन की मात्रा में कमी होने जैसे प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। हम सबको यह पता है कि ग्रीन हाउस शीशे के उस घर को कहते हैं जहां उन नाजुक पौधों को उगाया जाता है जिन्हें गरमाहट और मौसम से सुरक्षा की जरूरत होती है। शीशे के पैनेल सूर्य की रोशनी और गर्मी को अंदर तो आने देते हैं परंतु इस गर्मी को वापस बाहर नहीं जाने देते हैं। उल्टे शीशे के पैनेल गर्मी को धरती की ओर वापस लौटा देते हैं। यह गर्मी शीशे के घर को गर्म रखती है और नाजुक पौधों को सर्दी की ठिठुरन से बचाती है। इसे 'ग्रीन-हाउस' प्रभाव कहते हैं। एकदम ऐसा ही हमारी धरती के साथ हो रहा है। निचले वातावरण में कुछ गैसें, विशेषकर कार्बन डाईआक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन,

मीथेन और नाइट्रोजन के आक्साइड इत्यादि धरती के ऊपर एक परत बना लेते हैं। सामान्य तौर पर धरती ऊष्मा को अवशोषित करके उसे अंतरिक्ष में वापस भेजती है। परंतु पृथ्वी के ऊपर इन गैसों की परत बन जाने से वह इस गर्मी को वापस नहीं होने देती, बल्कि यही गर्मी पृथ्वी को वापस लौटा दी जाती है जिससे पृथ्वी और अधिक गर्म हो जाती है। रिपोर्ट के अनुसार धरती का तापमान बढ़ने के लिए 57 प्रतिशत जिम्मेदारी कार्बन डाईआक्साइड की, 25 प्रतिशत क्लोरोकार्बन की, 12 प्रतिशत मीथेन की और 6 प्रतिशत नाइट्रोजन की है। जब कोयला, तेल और अन्य जीवाश्म ईंधन जलते हैं तब कार्बन डाईआक्साइड पैदा होती है। असल में धरती का तापमान बढ़ने का सिलसिला उद्योगों और उसकी वजह से वातावरण में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने से चालू हुआ है।

क्या ग्रीन हाउस प्रभाव इतना गंभीर है ? हां, है। यदि ग्रीन हाउस में गैसें बढ़ती जाएंगी तो अधिक गर्मी पृथ्वी के वातावरण में कैद होकर धरती पर लौट जाएगी, और उसके फलस्वरूप धरती और गर्म हो जाएगी। पृथ्वी की गैरजरूरी गरमाहट के बहुत गंभीर प्रभाव होंगे। अधिक मात्रा में ध्रुवों की बर्फ पिघलने से सागरों में जल का स्तर बढ़ जाएगा जिससे पृथ्वी का काफी बड़ा भू-भाग इसमें डूब जाएगा। चीन, मिस्र, इन्डोनेशिया, बंगलादेश और पश्चिम बंगाल के लिए यह खतरा मंडरा रहा है। और तो और बरसात की प्रवृत्ति भी बदल जाएगी जो धरती पर जीव-जन्तुओं और पादप समूहों को भी प्रभावित करेगी। इस गर्म वातावरण में विषाणुओं, परजीवियों और कीट-पतंगों की संस्था अत्यधिक बढ़ जाने से मानव को इनसे होने वाली बीमारियों का खतरा बढ़ जाएगा।

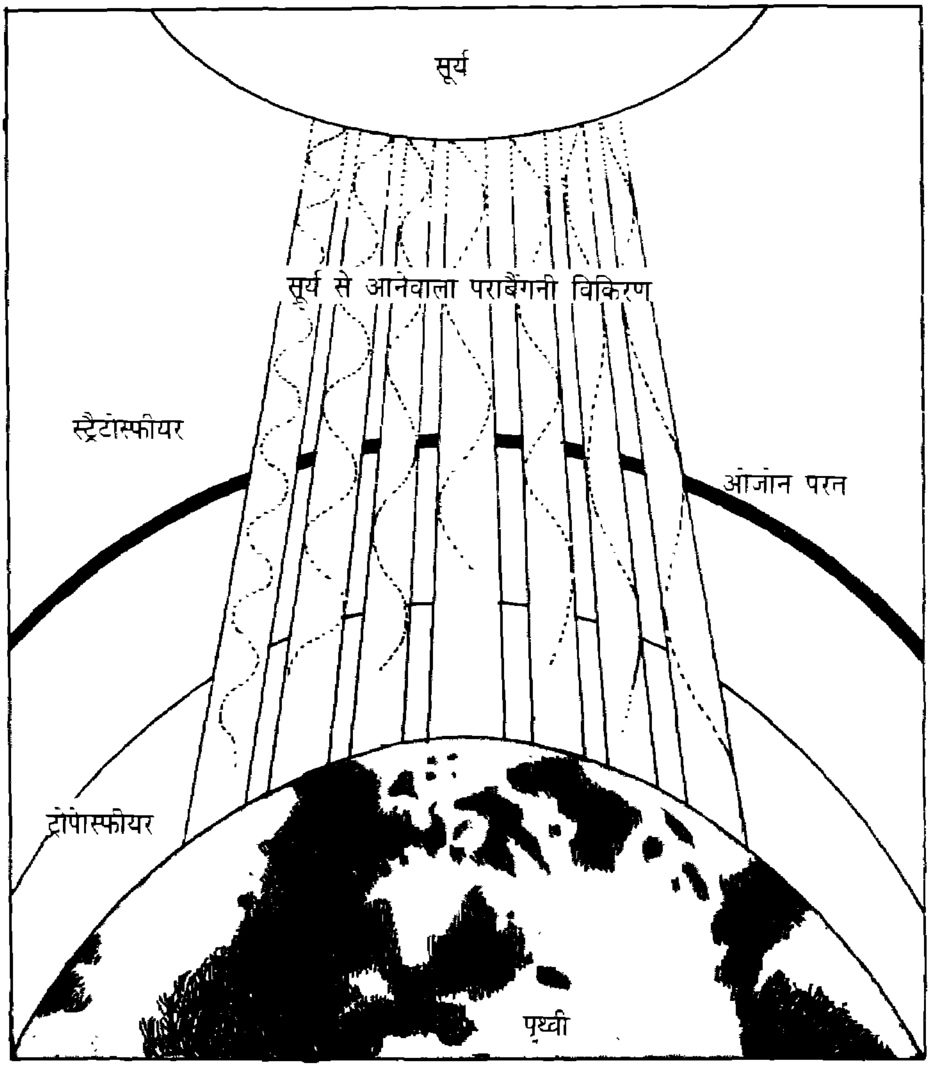
ओजोन परत सूर्य की तेज पराबैंगनी किरणों से धरती की रक्षा करती है। इसमें कमी से धरती पर जीवन दूभर हो जाएगा। इसके कारण अंधापन बढ़ेगा, गोरे मनुष्यों को त्वचा के कैंसर का खतरा बढ़ जाएगा; विश्व भर की खाद्य आपूर्ति तेजी से घट जाएगी और विश्व भर में बरसात की मात्रा में परिवर्तन तथा पारिस्थितिकीय गड़बड़ियां आए दिन की घटनाएं हो जाएंगी।

तापमान के आधार पर आमतौर पर वातावरण चार क्षैतिज सतहों में बांटा गया है। ट्रोपोस्फीयर (धरती से 12 किलोमीटर ऊपर तक का भाग जिसमें मौसम संबंधी सभी घटनाएं होती है); स्ट्रैटोस्फीयर (12 से 50 किलोमीटर के बीच का हिस्सा; इसी हिस्से में वातावरण की 95 प्रतिशत ओजोन मिलती है); मीजोस्फीयर (50-80 किलोमीटर), और थर्मोस्फीयर (80 किलोमीटर से ऊपर)।

यह ओजोन परत क्या है ? धरती के ऊपर स्ट्रैटोस्फीयर में 10-50

किलोमीटर के बीच का ओजोन की अधिकता वाला क्षेत्र ओजोन परत बनाता है। ओजोन की सबसे अधिक मात्रा 20-25 किलोमीटर के बीच में होती है। यह ओजोन परत धरती के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक आवरण का काम करती है तथा सूर्य की पराबैंगनी किरणों को धरती पर पहुंचने से रोकती है।

सन् 1987 तक ओजोन परत का घटना अधिक चिंता का विषय नहीं था। परंतु जब से एन्टार्कटिक क्षेत्र में पृथ्वी के स्ट्रैटोस्फीयर में ओजोन परत में एक छेद देखा गया है तब से वैज्ञानिक इस पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रहे हैं। तब से यह छेद काफी बढ़ गया है और संभव है कि अब इसका विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिका के क्षेत्रफल के बराबर हो गया हो। कनाडा के वैज्ञानिकों



द्वारा ओजोन की परत में एक और छेद का पता लगाने के बाद वैज्ञानिकों की चिंता और अधिक बढ़ गयी है। इस बार यह छेद आर्कटिक क्षेत्र में पाया गया है। ये छेद मौसम के अनुसार खिसकते रहते है। ओजोन की परत में केवल छेद ही नहीं देखे गये हैं बल्कि पूरी सतह में ओजोन की परत पतली होती जा रही है। ओजोन परत में ये छेद किस प्रकार होते हैं ? ओजोन परत के पतली होने का क्या कारण है ? इन सबका कारण सम्भवतः क्लोरोफ्लोरोकार्बन है जो दुनिया भर में रेफ्रिजरेटरों, प्रशीतकों, एअरोसोल स्प्रे के प्रणोदक तथा प्लास्टिक फोम में इस्तेमाल होता है।

डाक्टर रोसेली बेस्टेल[7] इस समस्या को दूसरे पहलू से देखती हैं। उनका कहना हैं कि ओजोन परत में कमी सीधे-सीधे अंतरिक्ष अभियानों के प्रभाव के कारण होती है न कि केवल एअरोसोल के डिब्बों और रेफ्रिजरेटर उद्योगों से निकले क्लोरोफ्लोरोकार्बन के कारण। उनका कहना है कि जब भी कभी कोई राकेट अंतरिक्ष में छोड़ा जाता है, वह हर बार 70-150 टन क्लोरीन वातावरण में छोड़ता है। 1980 के दशक में प्रति वर्ष लगभग 500 राकेट और अंतरिक्ष शटल अंतरिक्ष में भेजे गये; 1989 पहुंचने तक यह संख्या 1500 तक पहुंच गयी। इससे साफ पता चलता है कि किस हद तक वातावरण को लगातार और जान-बूझकर अस्त-व्यस्त किया जा रहा है।

ओजोन परत का पतला होना वातावरण में नाइट्रोजन के आक्साइड्स (विशेषकर नाइट्रिक आक्साइड) की उपस्थिति से भी हो सकता है, जो आवाज की गति से तेज चलने वाले हवाई जहाजों तथा मोटर वाहनों के धुएं से निकलती है। नाइट्रेट उर्वरकों के अधिक प्रयोग से काफी अधिक मात्रा में नाइट्रोजन आक्साइड उत्पन्न होती है—जो बाद में नाइट्रिक आक्साइड में बदल जाती है। नाइट्रिक आक्साइड ओजोन (O_3) पर आक्रमण करके उसे आक्सीजन में बदल देतो है। जब ओजोन परत पर इन गैसों का प्रभाव बहुत बढ़ जाता है, तब यह परत पतली हो जाती है और सूर्य की पराबैंगनी किरणें इसको पार करके धरती पर पहुच जाती हैं। ऐसा बताया गया है कि यदि क्लोरोफ्लोरोकार्बन की मात्रा दोगुणा हो जाए तो विश्व का तापमान 0.5^0 से. बढ़ जाएगा जिसके बहुत गंभीर परिणाम होंगे। इन परिणामों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है।

ऐसी भविष्यवाणी की गयी है कि ओजोन परत में छेद और उसके परिणाम

---

7. टोरोंटो, कनाडा स्थित इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट आफ कन्सर्न फार पब्लिक में अनुसंधान निदेशक डा. रोसेली बेस्टेल को निम्न ऊंचाई के विकिरणों पर उनके अनुसंधान के लिए जाना जाता है।

स्वरूप सूर्य की पराबैंगनी किरणों के प्रभाव के कारण होने वाला खतरा सबसे पहले दोनों ध्रुवों के आसपास होगा। वैसे भी अमेरिका और कनाडा पर बहुत अधिक खतरा मंडरा रहा है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इस आने वाली मुसीबत से आंखें मोड़ लें। इसे विश्व स्तर की समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए। ओजोन परत में व्यापक पैमाने पर होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भारत पर भी पड़ेगा।

वायु प्रदूषण का नियंत्रण और उसकी रोकथाम

वायु प्रदूषण का नियंत्रण और उसकी रोकथाम आज की जरूरत है क्योंकि इससे मनुष्य और जानवरों दोनों का जीवन खतरे में है। वायु प्रदुषण का मूल्य चुकाए बिना आधुनिक जीवन की बढ़ती जरूरतों और सुविधाओं को जुटा पाना संभव नहीं हैं, लेकिन यदि सही योजनाएं बनाकर उद्योगों को उचित स्थानों पर लगाया जाए, अच्छे उपकरण तैयार किए जाएं और उनका उचित इस्तेमाल किया जाए, तो प्रदूषण को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

सबसे पहला और सबसे आवश्यक नियम है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि जलाने की क्रिया अधूरी न हो। ज्यादा से ज्यादा दहन से धुएं की मात्रा घटाई जा सकती है। अर्थात् पूरी तरह जलाने से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि विषैली कार्बन मोनोआक्साइड हानिरहित कार्बन डाईआक्साइड में बदल जाए। ईंधन की मात्रा घटाकर तथा ईंधन और हवा का सही अनुपात सुनिश्चित करके दहन बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कोयले का पहले चूरा बनाकर फिर जलाया जा सकता है। कोक का आकार छोटा करके फिर उन्हें जलाया जा सकता है। हांथ से जलाने के स्थान पर यांत्रिक स्ट्रोक का प्रयोग करके दहन की क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

भारत में 66 ताप बिजलीघर हैं जिनसे हर साल 3-4 करोड़ टन अथवा प्रतिदिन लगभग एक लाख टन उड़ने वाली राख उत्पन्न होती है। ताप बिजलीघरों की संख्या और उनकी क्षमता में संभावित वृद्धि के पश्चात् प्रतिदिन निकलनेवाली, उड़ने वाली व राख की मात्रा 3.5 लाख टन पहुंच जाएगी। इतनी अधिक राख को बेकार नहीं होने देना चाहिए बल्कि उसका कोई लाभदायक उपयोग ढूंढ़ लेना चाहिए। इस राख से पोर्टलैंड-पोज़ोलोना सीमेंट, ईंटें और सेलूलर कंक्रीट तैयार करने के लिए अनुसंधान जारी हैं।

पुराने इंजन और उपकरण अधिक धुआं छोड़ते हैं। उन्हें या तो ठीक कराना

चाहिए या यदि संभव हो, तो उनके बदले नए इंजन और उपकरण ले लेने चाहिए।

हर उस उद्योग के लिए जिससे वायु प्रदूषण की संभावना हो, प्रदूषण को नियंत्रित करने वाले उपकरण जैसे अरेस्टर्स, स्क्रबर और फिल्टर लगाना अनिवार्य कर देना चाहिए। ताप बिजलीघरों तथा उड़ने वाली राख उत्पन्न करने वाले अन्य उद्योगों को अपने संयत्रों में ही इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रेसिपिटेटर लगा देने चाहिए।

केवल प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय भर काफी नहीं हैं। बल्कि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने वाले उपकरण लगातार और सही ढंग से काम करते रहें।

मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए बिजलीघर, उर्वरक संयंत्र, सीमेंट और पीड़कनाशी बनाने वाले उद्योग अथवा घना धुआं तथा जहरीली गैसें छोड़ने वाले अन्य उद्योग सदैव मानव आबादी से दूर लगाये जाने चाहिए।

औद्योगिक परिसरों तथा उनके आसपास सड़कों के किनारे तथा उद्योगों के नजदीक के घरों में अधिक संख्या में पेड़ लगाने चाहिए। पेड़ों में कार्बन डाईआक्साइड को अवशोषित करने की क्षमता होती है और इस प्रकार पेड़-पौधे वातावरण में फैली कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा कम करने में मदद करते हैं; तथा वायु में गैसों का उचित सामंजस्य बनाए रखते हैं।

वाहनों से निकलने वाले धुएं को नियंत्रित करने के लिए अनेक तकनीकें विकसित की गयी हैं, जैसे कि ट्यून-अप, कैटेलिटिक रिएक्टर और इंजन में सुधार। ट्यून-अप से धुएं के साथ निकलने वाले यौगिकों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, वायु और ईंधन का अनुपात अधिक होने पर कार्बन डाईआक्साइड और हाइड्रोकार्बन दोनों की मात्रा कम हो जाएगी। कैटेलिटिक रियेक्टर जहरीली कार्बन मोनोआक्साइड को हानिरहित कार्बन डाईआक्साइड में आक्सीकृत कर देते हैं और इस तरह वे नाइट्रोजन आक्साइड को नाइट्रोजन में बदल देते हैं। इंजन में सुधार के कुछ अपने विशेष लाभ हैं। सुधरे हुए इंजन में ईंधन को जलाने के लिए चौड़ी लौ उत्पन्न होती है। प्रदूषणमुक्त इंजन बनाने के लिए अत्यधिक अनुसंधान किए जा रहे हैं।

धरती का गर्म होना कम करने के लिए हर स्तर पर प्रयास जरूरी हैं। विशेष रूप से पैट्रोलियम उत्पादकों के प्रयोग को लेकर विकसित देशों के लोगों को अपनी जीवन शैली में बदलाव लाना जरूरी है। ऊर्जा के पुनर्नवीनीकृत स्रोतों जैसे वायु, सूर्य और समुद्री लहरों से ऊर्जा प्राप्त करने के नए उपाय अपनाने होंगे ताकि वातावरण में कम कार्बन डाईआक्साइड छोड़ी जाए। जंगलों को कटने

से रोकने के लिए बनाई गयी नीतियों को तेजी से लागू करना होगा क्योंकि हरियाली कार्बन डाईआक्साइड को अवशोषित करती है।

घटती हुई ओजोन परत को बचाने का कोई आसान उपाय नहीं है। यदि आज भी क्लोरोफ्लोरोकार्बन बनाने पर एकदम रोक लगा दी जाए, तो भी आज तक पैदा हुए क्लोरोफ्लोरोकार्बन वातावरण पर अपना हानिकारक प्रभाव अगले 100 वर्ष तक छोड़ते रहेंगे। ऐसा कोई भी प्रतिबंध अब तक हो चुके नुकसान को पलट नहीं पाएगा। इसलिए अब केवल एक उपाय बचता है कि सभी राष्ट्र एक दूसरे के साथ मिलकर सभी जीवित प्राणियों के जीवन को सुरक्षित रखने के तत्काल उपयुक्त उपाय अपनाकर ओजोन परत को और क्षीण होने से बचाने के लिए एक अभियान छेड़ दें।

प्रमुख वायु प्रदूषण दुर्घटनाएं

वायु प्रदूषण के प्रभाव से संबंधित वर्तमान जानकारी हमें मुख्य रूप से गंभीर वायु प्रदूषण घटनाओं के अध्ययन से प्राप्त हुई है। लोगों के छोटे समुदायों और समूहों की रिपोर्ट और रिकार्ड देखने से पता चलता है कि किस प्रकार जहरीली गैसों, वाष्प, एअरोसोल, धूल और पीड़कनाशियों से उन्हें पीड़ित होना पड़ा है अथवा उनकी मृत्यु हुई है। नीचे दी गयी कुछ घटनाओं से वायु प्रदूषण की गंभीरता को समझाने में मदद मिलेगी।

वायु प्रदूषण की सबसे भयंकरतम दुर्घटना है भोपाल गैस दुर्घटना जो मध्य प्रदेश के भोपाल शहर में 3 दिसम्बर 1984 को घटी थी। इस दुर्घटना ने पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया था। भोपाल गैस दुर्घटना में, जिसे इस शताब्दी की सबसे भयंकरतम दुर्घटना कहा जाता है, कम से कम 4000 लोगों की मृत्यु हुई और हजारों लोग अपंग हो गये। कई हजार लोग अन्धे हो गये। इस त्रासदी का दोष किसे दें ? ऐसी दुखद घटना हुई कैसे ? इस दुर्घटना के लिए जिम्मेदार थी जहरीली मिथाइल आइसोसाइनेट अथवा संक्षेप में मिक गैस, जो यूनियन कारबाइड के पीड़कनाशी बनाने वाले कारखाने से भंडारित करके रखने वाले टैंक से रिसकर बाहर निकल गयी थी। रिस कर बाहर निकलती गैस आसपास की हवा से मिली और उसे विषैला बना दिया। यूनियन कारबाइड कारखाने के आसपास यह जहरीली गैस फैल गयी और इसने मानव, जानवरों और पक्षियों को अपना शिकार बना लिया। इस घटना को कई साल बीत गये हैं मगर भोपाल के लोगों के दिलों में अभी भी उसका डर बना हुआ है। भारतीय आयुर्विज्ञान

अनुसंधान परिषद की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि इस गैस से प्रभावित हुए लोगों को इसकी पीड़ा अभी भी झेलनी पड़ रही है। इसके प्रभावों में प्रमुख हैं तंत्रिका विज्ञानी, क्रोमोसोमीय तथा आनुवांशिक विकारों के साथ शरीर के अनेक अंगो की क्षति।

एक भयानक प्रदूषण दुर्घटना दिसम्बर 1952 में लंदन में भी घटी थी। पूरे शहर में चार दिन तक कुहरा छाया रहा और कई लोगों की मृत्यु हुई। मृत्यु के रिकार्ड देखने से पता चला, इससे एक साल पूर्व इन्हीं दिनों की तुलना में उस साल इस घटना के दौरान और इसके अगले सप्ताह में 4000 से अधिक मौतें हुई थीं। बाद में यह निष्कर्ष निकला कि इस असामान्य मृत्यु दर का सबसे बड़ा कारण था श्वसनी शोथ (ब्रोंकाइटिस)। श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले अन्य रोगों से भी मृत्यु दर बढ़ी थी। आगे अध्ययन से वातावरण में धुएं और सल्फर डाईआक्साइड की बढ़ी हुई मात्रा और मृत्यु दर में गहरा संबंध पाया गया।

लंदन की इस पर्यावरण दुर्घटना से पहले दिसम्बर 1930 के प्रथम सप्ताह में बेल्जियम की मियूस घाटी में एक दुर्घटना घटी थी। यह दुर्घटना घने कुहरे के साथ-साथ आसपास के औद्योगिक संयंत्रों से निकले धुएं तथा अन्य उत्सर्जी पदार्थों के कारण घटी थी। रिपोर्ट में यह बताया गया कि अनेक निवासियों ने सांस लेने में तकलीफ की शिकायत की थी और उस दौरान की मृत्यु दर साधारण परिस्थितियों के दौरान होने वाली मृत्यु दर से लगभग दस गुणा अधिक थी।

अक्तूबर 1948 में अमेरिका में पेन्सिलवेनिया स्थित दोनारा के अत्यधिक औद्योगीकृत क्षेत्र में एक भयानक दुर्घटना घटी थी। वहां के निवासियों को एक असामान्य मौसम का सामना करना पड़ा। यह मौसम असाधारण रूप से ठहरा हुआ था और हवा भी लगभग स्थिर सी थी। श्वसन मार्ग में गड़बड़ी संबंधी शिकायतें अचानक असाधारण रूप से बढ़ गयीं और कस्बे की लगभग आधी आबादी (12, 000) में ये लक्षण दिखाई दिए। एक इलाके में 17 मौतें हुई जबकि सामान्य परिस्थितियों में उतने समय के भीतर केवल 2 मौतें हुआ करती थीं।

मेक्सिको के पोजा रिका में एक तेलशोधक कारखाने में 1950 में एक औद्योगिक दुर्घटना हुई थी। कारखाने से निकलकर हाइड्रोजन सल्फाइड गैस कारखाने के चारों ओर के मैदान में फैल गयी थी और आसपास के घरों में भी भर गयी थी। इससे 22 लोगों की मृत्यु हुई और लगभग 320 लोग बीमार पड़ गये थे। लॉस एंजेल्स का पूरा क्षेत्र कुछ समय के लिए वातावरण में वायु प्रदूषकों की अधिक मात्रा से प्रभावित हुआ था जिससे वहां के निवासियों को आंखों,

नाक और गले में जलन होने लगी थी। पेड़ पौधों पर भी इसका असर पड़ा था।

बाल्टिक सागर के किनारे प्रूसिया के पूर्वी समुद्र तट के मछुआरों को 1924 से 1927 के बीच में एक विचित्र सी बीमारी ने प्रभावित किया था। वायु प्रदूषण को इसके लिए जिम्मेदार पाया गया। इस बीमारी को 'हाफ रोग' नाम दिया गया क्योंकि इससे मुख्यतः 'हाफ समुदाय' के लोग प्रभावित हुए थे। इस रोग से लोगों की मांसपेशियों में ऐंठन होने लगी थी और वे अल्परक्तता के शिकार हो गये थे जैसा कि जहरीली गैस के प्रभाव में होता है। इस रोग के लिए जिम्मेदार आर्सी गैस सम्भवतः नजदीकी कारखाने से फेंके गये आर्सेनिकयुक्त कचरे से निकली थी।

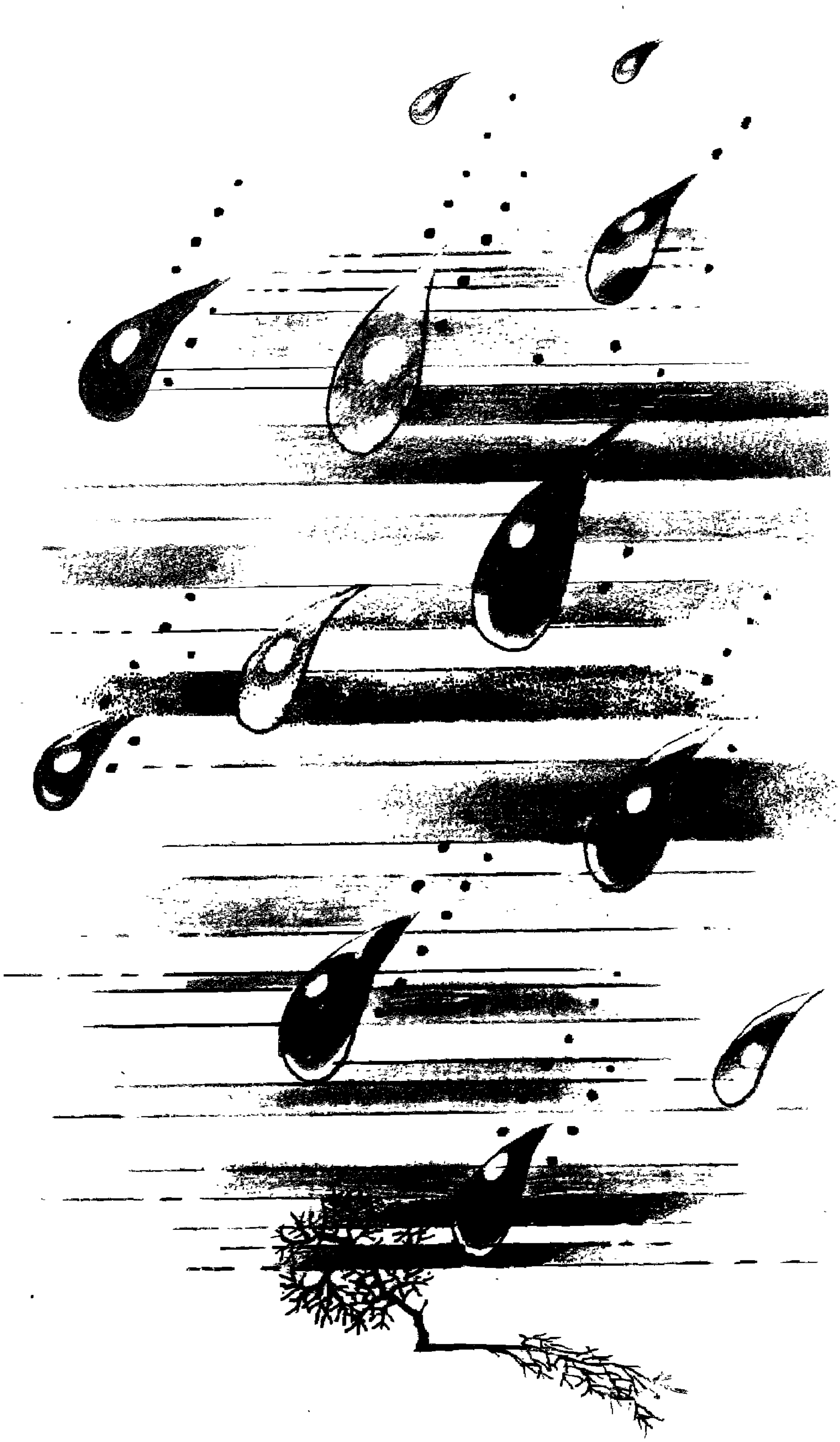
3

अम्लीय वर्षा–विश्वव्यापी खतरा

हम सभी उस वर्षा के बारे में जानते हैं जो पानी बरसाती है। परंतु क्या आपने कभी उस बरसात के बारे में सुना है जिसमें पानी के स्थान पर अम्ल बरसता है ? हां, यह एक नयी घटना है जो पिछले तीन दशकों से संसार के अलग-अलग उन हिस्सों में दिखाई दे रही है जहां एक ही स्थान पर बहुत से उद्योग हैं और जिन क्षेत्रों में मोटर वाहनों की संख्या बहुत अधिक है। बरसात का शुद्ध पानी पृथ्वी की तरफ आते समय रास्ते में सल्फर और नाइट्रोजन के आक्साइड से क्रिया करके अम्ल बनाता है। ये आक्साइड कहां से निकलते हैं ? निस्संदेह ये उन उद्योगों से जहां कोयला और तेल जलाया जाता है, तथा मोटर वाहनों के धुएं से निकलते हैं। इस तरह यह साबित हो जाता है कि अम्लीय वर्षा उन औद्योगिक गतिविधियों से होती है जो वायु को प्रदूषित करती हैं। इसके प्रमुख स्रोत हैं वे बिजलीघर जहां बिजली के उत्पादन के लिए कोयला जलाया जाता है। अधिकांश कोयले में सल्फर (गंधक) होती है जो कोयला जलाने पर सल्फर डाईआक्साइड में बदल जाती है।

पर्यावरण वैज्ञानिक अम्लीय वर्षा को लेकर इतने चिंतित क्यों हैं ? क्योंकि यह एक विश्वव्यापी संकट है। विश्व के उत्तरी गोलार्ध के काफी बड़े हिस्से को उजाड़ कर इसने अब दक्षिणी गोलार्ध के औद्योगिक क्षेत्रों की ओर अपना रुख किया है। यह अस्थिर विध्वंसक जंगलों को खा जाता है, ताजे पानी के स्रोतों को अम्लीय बना देता है, मुनष्य को भी अपनी चपेट में ले लेता है तथा हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के प्रतीक तथा बीते समय के साक्ष्य के रूप में खड़े हुए स्मारकों और भवनों में न ठीक हो सकने वाली क्षति पैदा कर देता है।

पानी की अम्लता या क्षारीयता पी एच (pH) पैमाने पर मापी जाती है। किसी द्रव में हाइड्रोजन आयन की सांद्रता ही पी एच की सूचक है। इस पैमाने



में, कम पी एच का अर्थ है हाइड्रोजन आयन की अधिक सांद्रता तथा अधिक अम्लीयता। शुद्ध पानी का पी एच 7 होता है, जिसे उदासीन पी एच कहते हैं। पानी का पी एच 7 से कम होने पर वह अम्लीय बन जाता है और 7 से ऊपर होने पर क्षारीय।

वर्षा के पानी में कार्बन डाईआक्साइड घुली होने के कारण उसका पी एच अक्सर 7 से कम (पी एच 5.7, हल्का अम्ल) होता है, परंतु इतनी अम्लीयता क्षयकारी नहीं होती है। अम्लीय वर्षा के पानी का पी एच 2-5 होता है। इतने कम पी एच का अर्थ है अधिक अम्लीयता जिसके परिणामस्वरूप अधिक क्षयकारी होना। इसलिए 4 पी एच का पानी 5 पी एच के पानी से दस गुना अधिक क्षयकारी होता है। जिस पानी का पी एच 3 हो वह 5 पी एच वाले पानी से 100 गुना अधिक क्षयकारी होता है। यदि ऐसा ही है तो कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि अम्लीय वर्षा जिसका पी. एच 2 और 3 के बीच है, कितनी क्षयकारी होगी।

जैसा कि बताया जा चुका है, कि बरसात के पानी का पी एच 7 से कम होता है। फिर ऐसा क्या है जो वर्षा के साधारण जल को अम्लीय बनाता है, और फिर वही अम्लीय जल वर्षा के रूप में धरती पर बरसता है ? यह परिवर्तन उद्योगों से निकली गैसों (सल्फर के आक्साइड) और वाहनों के धुएं से निकली गैसों (नाइट्रोजन के आक्साइड) के कारण आता है। ये गैसें पानी की बूंदों और बर्फ के क्रिस्टलों में घुलने से पहले आक्सीकारकों, उत्प्रेरकों और सूर्य की किरणों के प्रभाव में क्रिया करके तनु (पतला) अम्लीय घोल बनाती हैं। यह अम्लीय घोल धरती पर वर्षा, बर्फ, ओला, ओस और कुहरे के रूप में गिरता है। अम्लीय वर्षा की एक विशेष बात यह है कि उसे बनाने वाले कारक अलग जगह से उत्सर्जित होते हैं और अम्लीय वर्षा दूसरी जगह होती है। एक देश में उत्सर्जित प्रदूषक तत्व वातावरण में प्रवेश करते हैं, हवा के साथ उड़कर हजारों किलोमीटर दूर पहुंचते हैं और दूसरे देश की धरती पर अम्लीय वर्षा के रूप में बरस जाते हैं। उदाहरण के लिए इंग्लैंड और जर्मनी में उत्सर्जित प्रदूषक अम्लीय वर्षा के रूप में स्वीडन और नार्वे में जाकर बरसे थे। कनाडा हालांकि अमेरिका की तुलना में कम प्रदूषित गैसें वातावरण में छोड़ता है फिर भी अम्लीय वर्षा कनाडा में अधिक होती है। बरसात की कोई राष्ट्रीय सीमा नहीं होती है इसलिए दूसरे प्रदूषकों की तुलना में अम्लीय वर्षा एक विश्वव्यापी घटना है।

अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रांति के समय से ही मनुष्य विभिन्न प्रकार के पदार्थों के निर्माण के लिए ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों की खोज में लगा हुआ

है। अन्ततः अधिक मात्रा में कोयला और ईंधन जलाना पड़ता है और ईंधन में मौजूद सल्फर अम्लीय गैस सल्फर डाईआक्साइड में बदल जाती है– इस शताब्दी में यह गैस वातावरण में सबसे अधिक उत्सर्जित की गयी है।

अम्लीय वर्षा की समस्या 1950 के दशक के आरंभिक दिनों में प्रारंभ हुई। वातावरण में उत्सर्जित होने वाले धुएं की मात्रा कम करने के उद्देश्य से कोयला जलाना कम करने के लिए गैस सिलिंडरों का प्रयोग शुरू किया गया और ताप बिजलीघरों में कोयला जलने से उत्पन्न ज्वलनशील गैसों के साथ निकलने वाली उड़नशील राख को अलग करने के लिए संयंत्रों में प्रेसिपिटेटर लगाए गये। नए बिजलीघरों को शहरों से बहुत दूर स्थापित किया गया और इनमें बहुत ऊंची-ऊंची चिमनियां (अक्सर 150 मीटर से भी ऊंची) लगाई गयीं, ताकि सयंत्र से निकली सल्फर डाईआक्साइड दूर-दूर तक फैल जाए और धरती पर अधिक सांद्रता में न पहुंचे। परंतु ये उपाय भी काफी नहीं साबित हुए। ज्यादा सल्फर डाईआक्साइड देर तक हवा में रहने से वह सल्फ्यूरिक अम्ल में बदल जाती है।

एक ताजा सर्वेक्षण के अनुसार वातावरण में हर साल लगभग 15 करोड़ टन सल्फर डाईआक्साइड छोड़ी जाती है, जो बाद में सल्फ्यूरिक अम्ल में बदल जाती है। दो-तिहाई अम्लीय वर्षा सल्फ्यूरिक अम्ल के कारण होती है। लगभग एक-तिहाई अम्लीय वर्षा नाइट्रिक अम्ल के कारण होती है। मोटर वाहनों से निकले नाइट्रोजन के आक्साइड वातावरण में क्रिया करके नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रति वर्ष लगभग 4 करोड़ टन नाइट्रोजन के आक्साइड वातावरण में छोडे जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वोत्तर क्षेत्र में आए आंधी-तूफान में सबसे कम पी एच 2.1 नवम्बर 1964 में मापा गया था। यूरोप में अब तक का सबसे कम पी एच 2.4 मापा गया है– स्काटलैंड में ऊंचाई पर स्थित पिटोचरी कस्बे में इस अम्लीय वर्षा के पानी को सिरके जितना अम्लीय पाया गया था। अम्लीय वर्षा जल का इससे भी कम पी एच 1.5 संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी वर्जीनिया स्थित व्हीलिंग में 1983 में मापा गया था। 2.7 और 3.5 पी एच मान क्रमशः नार्वे के पश्चिमी तट और आइलैंड के वर्षा जल का मापा गया है। भारत में 1974-75 में बृहत्तर मुम्बई में 4..8 पी.एच की वर्षा रिकार्ड की गयी थी। हमारे अधिकतर शहरों की समस्या यह है कि पुराने बिजलीघरों में अभी भी ऊंची चिमनियां नहीं लगाई गयी हैं और वे लगातार वातावरण में सल्फर डाईआक्साइड छोड़ रहे हैं; नाइट्रोजन आक्साइडों पर नियंत्रण पाना और भी

अधिक कठिन है, और इसलिए अम्लीय वर्षा की समस्या और बढ़ती जा रही है।

वर्ल्ड रिसोर्सेज रिपोर्ट के मुख्य संपादक डान हेनरिक्सन के अनुसार "अम्लीय वर्षा कुछ भी नहीं बख्शती है। जिसको बनाने में मनुष्य को कई दशक का समय लगा है और जिसे विकसित करने में प्रकृति को हजारों वर्ष लगे हैं, वह केवल कुछ ही वर्षों में नष्ट होकर खाक में मिल रहा है।"

अम्लीय वर्षा के हानिकारक प्रभाव

अम्लीय वर्षा धरती पर फसलों और पौधों की वृद्धि में रुकावट डाल सकती है, जंगलों का नाश कर सकती है और मनुष्य के लिए श्वसन से संबंधित खतरनाक स्वास्थ्य समस्याएं पैदा कर सकती है। जर्मनी, स्विटजरलैंड और स्वीडन में लगभग आधे प्राकृतिक वन या तो खत्म हो गये हैं अथवा खत्म हो रहे हैं और ब्रिटेन में लगभग 60 प्रतिशत पेड़ सड़-गल रहे हैं। सबसे अधिक पृथ्वी का वह हिस्सा प्रभावित हुआ है जो पश्चिमी न्यूयार्क से प्रारंभ होकर पूरब में वरमौंट से लेकर, मेसाच्यूसैटस से उत्तरी कैरोलाइना तक फैला हुआ है। वरमौंट के सदाबहार वनों के वृक्षों की बढ़वार बार-बार अम्लीय वर्षा और कुहरे का सामना करते-करते धीमी हो गयी है। वृद्धि में गिरावट अम्लीय वर्षा की अवधि बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार अम्लीय वर्षा ने कोलोरैडो के जंगलों में स्थित यैलोस्टोन नैशनल पार्क को भी प्रभावित किया है। तीस वर्ष पहले यहां लाल स्प्रूस वृक्षों और सुगंधित देवदारू वृक्षों का घना जंगल था। इनमें से कुछ वृक्ष तो 30 मीटर ऊंचे हैं और कुछ सदियों पुराने हैं। दुख की बात यह है कि इनमें से अधिकांश वृक्ष अब मर रहे हैं, और जंगल अनुपजाऊ पहाड़ियों में बदलते जा रहे हैं। इसी प्रकार की घटनाएं पश्चिमी जर्मनी जैसे उत्तरी गोलार्ध के कई दूसरे देशों में हो रही हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार अकेले मध्य यूरोप में ही अम्लीय वर्षा से 50 करोड़ वर्ग मीटर क्षेत्र में फैले वन नष्ट हो गये हैं।

नार्वे की लगभग 80 प्रतिशत झीलों और स्वीडन की लगभग 25 प्रतिशत झीलों में न तो मछलियां हैं और न ही कोई अन्य जलीय जीव। संयुक्त राज्य अमेरिका की लगभग 20 प्रतिशत झीलें बंजर हो गयी हैं– पानी बिल्कुल साफ है परंतु जीवनरहित। इन झीलों के निर्जीव होने के लिए कौन जिम्मेदार है ? निस्सन्देह, अम्लीय वर्षा। यह पता चला है कि स्कैन्डीनेविया और कनाडा की ज्यादातर झीलों और नदियों में ट्राउट और सालमन मछलियों की संख्या अब बहुत कम हो गयी है। जब पी एच 5.5 से कम हो जाता है (अर्थात् अम्लीयता बढ़

जाती है), तब मछलियां प्रजनन नहीं कर पातीं। उनके अंडों से बच्चे नहीं निकल पाते। यदि कुछ निकल भी गये तो वे मर जाते हैं। और यदि मरने से भी बच गये तो उनमें अनेक प्रकार की विकृतियां पैदा हो जाती हैं। वयस्क मछलियों में अम्लीय पानी उनकी हड्डियों से क्रिया करता है। उनकी हड्डियों में कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती है। मांसपेशियां तो स्वस्थ्य रहती हैं परंतु हड्डियों के कमजोर होने से शरीर में विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। उनके गलफड़ों में एल्यूमीनियम के यौगिक जमा हो जाने से उन्हें सांस लेने में भी तकलीफ होती है। जब पानी का पी एच इतना कम हो जाए कि वह अम्लीय होने लगे तब पानी में जमा पदार्थों के घुलने से एल्यूमीनियम यौगिक बनते हैं। उभयचर प्राणियों जैसे सैलामैन्डर के अंडे यदि अम्लीय पानी में दिए गये हों तो उनमें ठीक से विकास नहीं हो पाता है। साथ ही, पानी में उगने वाले पौधों की किस्में और संख्या भी कम हो जाती है। लिली जैसे बड़े पौधे बिल्कुल समाप्त हो सकते हैं। अन्ततः झीलें तथा चश्में दोनों ही जीवरहित हो जाते हैं। यहां तक कि पक्षी भी नहीं बच पाते हैं। अम्लीय पानी की झीलों के निकट रहकर प्रजनन करने वाले पक्षी जलकीटों को खाकर उनमें मौजूद एल्यूमीनियम की विषाक्तता का शिकार हो जाते हैं।

अम्लीय पानी की बरसात से मिट्टी की ऊपरी सतह बह जाती है जिसके पश्चात यह अम्लीय पानी मिट्टी की निचली सतह में पहुंच जाता है और भूमिगत जल को अम्लीय बना देता है। पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व या तो बह जाते हैं अथवा पौधों को प्राप्त नहीं होते हैं। इसके विपरीत एल्यूमीनियम, सीसा और पारा जैसी अन्य धातुएं जो पौधों के लिए विषैली होती हैं अधिक घुलनशील हो जाती हैं और पौधों की वृद्धि कम कर देती हैं। इसका कुल परिणाम होता है पौधों को क्षति, उनकी कम वृद्धि और उनके रोगी हो जाने की अधिक संभावना।

आइए, अब निर्जीव वस्तुओं पर अम्लीय वर्षा का प्रभाव देखें। क्या पत्थरों को कोढ़ हो सकता है ? संगमरमर (यह पत्थर मुख्यतयाः कैल्शियम कार्बोनेट का बना होता है) से बने स्मारकों, मूर्तियों, भवनों आदि को अम्लीय वर्षा का खतरा अधिक होता है। अम्लीय वर्षा में मौजूद सल्फ्यूरिक अम्ल कैल्शियम कार्बोनेट से क्रिया करके उसे जिपसम (कैल्शियम सल्फेट) में बदल देता है जिसका आयतन संगमरमर से लगभग दोगुना होता है। इसके फलस्वरूप सतह पर दबाव उत्पन्न होता है जिससे पत्थर की परतें उतर जाती हैं, उसमें गड्डे हो जाते हैं और उसका क्षय हो जाता है। और तो और, बरसात सतह पर बने

जिपसम को धो डालती है जिससे सतह के ऊपर बनाई गयी आकृतियों को काफी क्षति पहुंचती है। जनसामान्य की भाषा में इस प्रक्रिया को 'पत्थर का कोढ़' कहा जाता है।

यह अनेक वर्षों से ज्ञात है कि शुद्ध वायु की अपेक्षा प्रदूषित वायु में स्टील और तांबे जैसी धातुओं की तेजी से क्षति होती है। चूने के पत्थर पर भी अम्लों का प्रभाव पड़ता है इसलिए अनेक शहरों में चूने के पत्थर से बनी इमारतों और मूर्तियों को क्षति पहुंच रही है।

विश्व के सात आश्चर्यों में से एक, ताजमहल को भी आगरा के समीप ही मथुरा में स्थित तेल शोधक कारखाने से निकली अम्लीय गैसों के कारण पत्थरों का कोढ़ हो रहा है। यूनानी शिल्पी फिडियास द्वारा पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित नारी स्तंभ अथवा संगमरमर से निर्मित कुमारियों की 6 मूर्तियां 2500 वर्षों से यूनान की राजधानी एथन्स की शोभा थीं। परंतु 1977 में उन्हें हटाकर संग्रहालय में रख दिया गया है। इसका कारण भी अम्लीय वर्षा है। 1960 के दशक में इन मूर्तियों का काफी क्षरण हो गया था, इसलिए इनके जैसी फाइबर की मूर्तियां बनाकर वहां लगाई गयी हैं। ब्रिटेन में भी अम्लीय वर्षा से काफी नुकसान हुआ है जिसके प्रमाण कैन्टरबरी, आक्सफोर्ड और लंदन की ऐतिहासिक इमारतों के क्षरण से मिलते हैं।

अम्लीय वर्षा ने अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को एक नया आयाम दिया है। यह राष्ट्रों के कूटनीतिक संबंधों के बीच किरकिरी साबित हो सकती है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी जर्मनी और स्वीडन के रिश्तों में दरार है क्योंकि स्वीडन की लगभग 20 प्रतिशत झीलें जर्मनी के रूहर औद्योगिक क्षेत्र से निकली अम्लीय गैसों से हुई अम्लीय वर्षा से प्रभावित हैं। यहां तक कि स्वीडन के स्कूली बच्चों ने इन गैसों के उत्सर्जन के लिए पश्चिमी जर्मनी के विरुद्ध एक पोस्टकार्ड अभियान भी चलाया था।

इंग्लैंड और उसके पड़ोसी देशों के बीच भी कोई ज्यादा अच्छे संबंध नहीं हैं, और स्कैन्डीनेविया अपने देश में अम्लीय पानी जमा होने के लिए इंग्लैंड को दोषी मानता है। अम्लीय वर्षा के विवाद को लेकर अमेरिका और कनाडा के रिश्तों में भी तनाव है। कनाडा में जमी लगभग आधी सल्फर अमेरिका से आती है और उत्तर-पूर्वी अमेरिका में जमा लगभग 20 प्रतिशत सल्फर कनाडा की देन है।

अम्लीय वर्षा और मानव स्वास्थ्य के बीच अभी भली-भांति सीधा संबंध स्थापित नहीं किया गया है। हालांकि ऐसा माना जाता है कि अधिक समय तक

अधिक सल्फर डाईआक्साइडयुक्त वायु में सांस लेने से श्वसन संबंधी बीमारियां, जैसे वातस्फीति, दमा और श्वसनिका दमा, हो जाती हैं। जलस्रातों और पानी के पाइपों में अम्लीय जल की उपस्थिति से भारी धातुएं घुलकर जल आपूर्ति में मिल सकती हैं जिनसे गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

भारत में अभी इस विपत्ति का गंभीर खतरा नहीं पैदा हुआ है क्यांकि यहां के कोयले में सल्फर की मात्रा कम (0.5-0.7 प्रतिशत) होती है। दूसरे देशों, विशेषकर अमेरिका में बिटुमिनस की खानों में सल्फर की मात्रा 6-8 प्रतिशत होती है। इस कोयले को जलाने से अधिक मात्रा में सल्फर डाईआक्साइड निकलती है। फिर भी अपने देश में लगातार अत्यधिक सतर्कता की आवश्यकता है, क्योंकि मुंबई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरों में वातावरण में सल्फर डाईआक्साइड की मात्रा काफी अधिक है।

अम्लीय वर्षा की रोकथाम और नियंत्रण

अम्ल के जमाव पर नियंत्रण पाना इतना आसान नहीं है क्योंकि यह अनेक प्रकार की मानक गतिविधियों से जुड़ा है। परंतु स्थिति काबू से बाहर न हो जाए इसके लिए अभी से निम्नलिखित उपाय अपनाए जाने चाहिए :

- जिन बिजलीघरों में ईंधन के रूप में कोयले का इस्तेमाल होता है उन्हें कम सल्फर वाला कोयला इस्तेमाल करना चाहिए अथवा ऐसा ईंधन इस्तेमाल करना चाहिए जिससे प्रदूषण कम हो।
- जहां कहीं जरूरी हो, जैसे कि प्रगलकों में, वहां सल्फर डाईआक्साइड को अवशोषित करने की व्यवस्था करनी चाहिए।
- मोटर-वाहनों में कैटालिटिक कन्वर्टर लगाने चाहिए ताकि वे धुएं को साफ रखें (नाइट्रोजन के आक्साइड अहानिकारक हो जाते हैं और कार्बन मोनोआक्साइड कार्बन डाईआक्साइड में बदल जाती है)। इंजनों को अच्छी तरह ट्यून होना चाहिए जिससे धुएं से निकलने वाली गैसों की मात्रा कम हो।
- उत्सर्जन नियंत्रण का सख्ती से पालन होना चाहिए।

4

पीड़कनाशी–खतरा सर्वत्र व्याप्त है

पीड़क आमतौर पर प्रयुक्त होने वाला शब्द है। यह कीटों, चूहों, कृंतकों, खर-पतवार, फफूंद आदि उन सभी जीवित प्राणियों के लिए प्रयुक्त होता है, जो भोजन के लिए मनुष्य से प्रतिद्वंद्विता करते हैं और इस प्रक्रिया में वे पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं को नुकसान पहुंचाते हैं तथा साथ ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर देते हैं। पीड़कों पर नियंत्रण पाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले रसायनों तथा अन्य पदार्थों को पीड़कनाशी कहा जाता है।

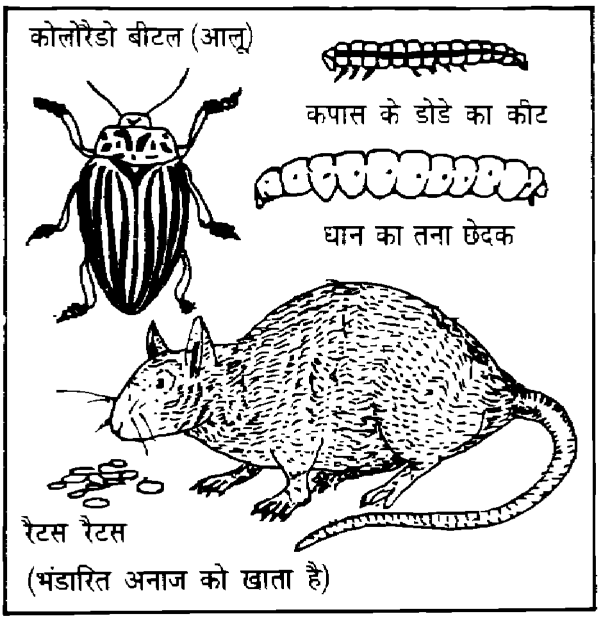
पीड़कनाशी फसलों को तो पीड़क अथवा कीटों से बचाते हैं, परंतु इस प्रक्रिया में वे मनुष्य और पालतू पशुओं को भी प्रभावित करते हैं। किसान, माली तथा वन कर्मियों द्वारा तथा घरों, उद्योगों, गोदामों और दुकानों में लगभग 1000 प्रकार के पीड़कनाशियों का प्रयोग किया जा रहा है। कृषि उद्योग में इन रसायनों का प्रयोग पौधों को पीड़कों तथा रोगों से बचने के लिए तथा बीजों को उपचारित करने के लिए किया जाता है। पिछले केवल तीन दशकों के दौरान विकसित ये रसायन हालांकि मनुष्य के लिए उपयोगी हैं परंतु साथ ही इन्होंने अनेकों पर्यावरण संबंधी समस्याओं को जन्म दिया है। डी डी टी ने मलेरिया तथा अन्य बीमारियां फैलाने वाले मच्छरों को मारकर कई जाने बचाई हैं, परंतु यही डी डी टी जब मछलियों, पक्षियों तथा अन्य जंगली जीवों के शरीर में जमा हो जाती है तो वह प्रदूषक बन जाती है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के पीड़कनाशियों का प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप अधिक प्रतिरोधी क्षमता वाले पीड़क पैदा हो गये। इसके कारण बहुत अधिक मात्रा में पीड़कनाशी दवाओं का प्रयोग करना जरूरी हो गया जिससे लगभग सभी कृषि उत्पादों में पीड़कनाशियों के अवशेष पाए जाने लगे हैं। पीड़कनाशियों के अंश सब्जियों, दूध, मां के दूध, मछलियों


Pesticides
DDT

और मांस में पाए गये हैं। खाने और पानी के नमूनों में तो इन पीड़कनाशियों की मात्रा तो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्वीकार्य सीमा से कहीं अधिक पाई गयी है।

सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाले पीड़कनाशी तो आर्गेनोक्लोरीन अथवा आर्गेनोफास्फोरस यौगिक हैं। आर्गेनोक्लोरीन यौगिकों में (जिन्हें क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन भी कहा जाता है) डी डी टी, बी एच सी (लिंडेन), आल्ड्रिन, डील्ड्रिन, आदि पीड़कनाशी आते हैं। पैराथिआन, मैलाथिआन, टी ई पी पी और टाक्साफेन आदि आर्गेनोफास्फोरस पीड़कनाशी हैं। आर्गेनोक्लोरीन यौगिकों की एक विशेष बात यह है कि उनका आसानी से जैव विघटन नहीं होता है और बिना किसी परिवर्तन के वे वर्षों उसी रूप में बने रहते हैं। इनमें से अधिकांश वसा में घुलनशील हैं, इसलिए खाद्य श्रृंखला में ये पीड़कनाशी लगातार जमा होते जाते हैं। आर्गेनोफास्फोरस यौगिक जैव विघटनशील हैं और अधिक समय तक वहीं बने रहते हैं। जबकि दोनों तरह के पीड़कनाशी विषैले हैं और तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं।



अनेक वर्षों तक पीड़कनाशियों के हानिकारक प्रभाव की कोई जानकारी नहीं थी। यह जानकारी 1950 में उस समय प्राप्त हुई जब संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिकों ने अचानक यह देखा कि पक्षियों, विशेष रूप से चीलों, बाजों और

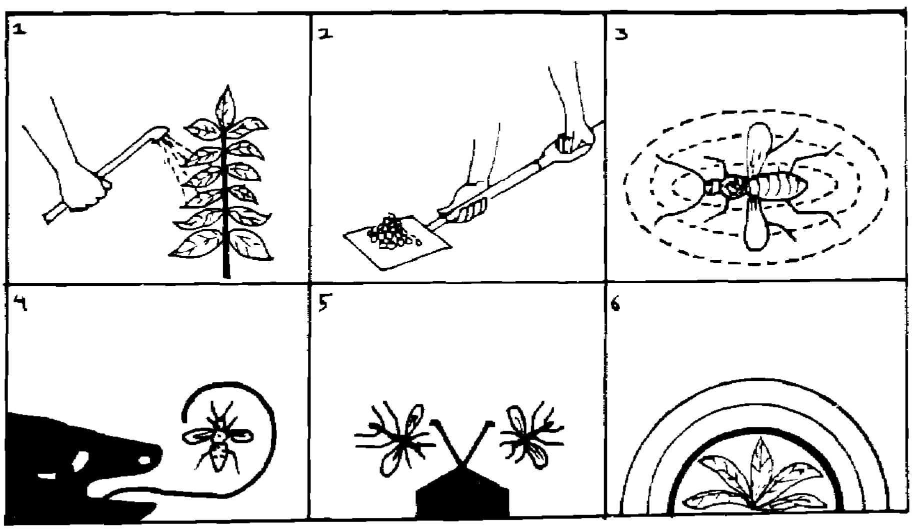
मछरंगों (चील की वह प्रजाति जो सिर्फ मछली खाती है) की आबादी घट रही है। सावधानीपूर्वक किए गये अध्ययनों से पता चला कि ये पक्षी केवल पतले खोल वाले अंडे ही दे सकते थे। अंडों के खोल इसलिए पतले थे क्योंकि इन पक्षियों के शरीर में डी डी टी जमा हो गयी थी। इनके शरीर में यह डी डी टी उनके द्वारा खाए गये उन कीटों तथा अन्य जानवरों से आई थी जो डी डी टी के सम्पर्क में आए थे। एक आश्चर्यजनक घटना जो देखने में आई, वह यह थी कि उन स्थानों के पक्षियों में भी यही प्रभाव देखे गये जहां डी डी टी का छिड़काव नहीं किया गया था। अनेक वर्षों बाद यह प्रमाणित हुआ कि चूंकि डी डी टी जैव-अपघनशील नहीं हैं इसलिए यह बिना किसी परिवर्तन के वर्षों पड़ी रहती है तथा हवा, वायु और नदियों द्वारा धरती और समुद्र के दूर-दूर के भागों तक पहुंच जाती है। और तो और, अंटार्कटिक प्रदेश (जहां डी डी टी पहुंचने की जरा सी भी संभावना नहीं है) में भी पैंगुइन्स के शरीर में डी डी टी होने के प्रमाण मिले हैं। डी डी टी मानव शरीर में भी जमा होती है। परंतु यह अभी भी नहीं जाना जा सका है कि किस सीमा के पश्चात शरीर में जमा डी डी टी हानिकारक हो जाती है। फिर भी अधिकांश विकसित देशों ने डी डी टी और उस जैसे अन्य उत्पादों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है। परंतु भारत में



अभी भी इसका प्रयोग होता है क्योंकि ये सबसे अच्छे और सस्ते पीड़कनाशी हैं, हालांकि वे स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देते हैं।

1985 की रोचक घटना मुझे याद आ रही है। अमेरिका और कनाडा के लगभग 200 व्यक्तियों को अपना मनपसंद गर्मी का फल तरबूज खाने के बाद अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। ग्रेनुलर पीड़कनाशी एल्डीकार्ब (जिसका व्यापारिक नाम टेमिक है) से संदूषित फल खाने से इन व्याक्तियों में बीमारी, बुखार, पसीना और कंपकपी जैसे लक्षण दिखाई देने लगे थे। यह रसायन मिथाइल आइसोसाइनेट (मिक) से बनता है, जिसके रिसने से 1984 की भोपाल गैस दुर्घटना में लगभग 4000 लोगों की मृत्यु हुई थी। सौभाग्यवश अमेरिका और कनाडा में किसी की मृत्यु नहीं हुई थी और लोगों को विषाक्तता से बचाने के लिए अगले कई दिनों तक लाखो तरबूजों को नष्ट किया जाता रहा।

केरल राज्य के चावल की कटोरी कहे जाने वाले जिले कुट्टानाड में अभी हाल ही में पीड़कनाशी-विषाक्तता के कारण मछलियों में एक गंभीर बीमारी हो



1. दूसरे पीड़कनाशी का प्रयोग करके रसायन को बदलें।
2. पर्यावरण को बदलें, जैसे कि अंडों के स्थलों की खुदाई करके।
3. मादा पीड़क से प्रतिद्वंद्विता के लिए एक्स किरणों से बंधीकृत नर पीड़कों को छोड़कर आनुवंशिक नियंत्रण।
4. पीड़ककीट को नष्ट करने के लिए उसके प्राकृतिक शत्रु को छोड़कर जैविक नियंत्रण।
5. सेक्स हार्मोनों अथवा रसायनों से पीड़कों को आकर्षित करके अथवा भगा कर व्यवहारिक नियंत्रण।
6. फसल पीड़कों का सामना करने में सक्षम पौधों की किस्मों का विकास करना।

गयी थी। यह भी पता चला कि फसलों के अनेक प्राकृतिक शत्रु फसलपीड़क भी समाप्त हो गये। इसी प्रकार की रिपोर्ट उड़ीसा और आंध्रप्रदेश से भी प्राप्त हुई है। उड़ीसा की चिल्का झील और आंध्रप्रदेश की कोलेरू झील के पानी में मौजूद पीड़कनाशियों के अंशों ने पक्षियों तथा जलजीवों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। मछलियों की संख्या भी घट रही है।

1989-90 में किए गये एक सर्वेक्षण से पता चला कि भारत में पीड़कनाशी-विषाक्तता से लगभग 600 लोगों की मृत्यु हुई और हजारों लोग अपाहिज हो गये। कर्नाटक के चिकमगलूर जिले में केकड़े खाने से लोग पीड़कनाशियों की उपस्थिति के कारण अपाहिज हो गये। इसके अतिरिक्त पीड़कों के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम हो जाने से काफी अधिक संख्या में पीड़कों की अनेक नई किस्में पैदा हो गयीं।

इससे पहले कि कोई गंभीर दुर्घटना घटे हमें युद्ध स्तर पर पीड़कनाशियों की समस्या का हल ढूंढ़ना होगा, क्योंकि पूरे दक्षिण-एशिया में भारत पीड़कनाशियों का सबसे बड़ा उत्पादक और प्रयोगकर्ता है। हाल ही में हुए अनुसंधानों से पता चला है कि हमारा देश दुनिया भर के 2 प्रतिशत पीड़कनाशियों का इस्तेमाल करता है, जबकि इनके कारण विश्व भर में होने वाली विषाक्तता की घटनाओं में से 50 प्रतिशत यहां होती हैं। पीड़कनाशियों का बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग करके इनसे होने वाले प्रदूषण को काफी हद तक कम किया जा सकता है। हमारे किसान पीड़कनाशियों का खुले दिल से जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे विषैले पदार्थों का हमारे यहां अभी भी प्रयोग किया जा रहा है जिनके उपयोग पर उनकी उच्च विषाक्तता और कैंसरजनक गुणों के कारण विकसित देशों में प्रतिबंध लगा दिया गया है।

पीड़कनाशियों से होने वाले प्रदूषण से बचने के कुछ उपाय इस प्रकार हैं :

- किसानों को पीड़कनाशियों का कम से कम प्रयोग करने की शिक्षा दें।
- चुनिंदा और अपेक्षाकृत सुरक्षित रसायनों का इस्तेमाल करें।
- जैव-अपघटनशील पीड़कनाशियों की खोज के लिए अनुसंधान को तेज करें।
- पीड़कों का जैविक नियंत्रण करें तथा पीड़कों के शत्रुओं के रूप में नए परजीवियों और परभक्षियों का इस्तेमाल करें।
- पौधों से प्राप्त होने वाले पीड़कनाशियों, जैसे नीम उत्पादों, के उपयोग को बढ़ावा दें।

- कीटों को आकर्षित करने और उन्हें बांझ बनाने के लिए कृत्रिम फेरोमोन्स का प्रयोग करें।
- इस समय प्रयोग में आने वाली यांत्रिक युक्तियों (जैसे लाइट ट्रैप) के अतिरिक्त अधिक सक्षम यांत्रिक युक्तियों की खोज करें।
- इन सबके ऊपर वैज्ञानिकों को पीड़कनाशियों के प्रतिरोध की क्षमता से युक्त फसलों की नयी किस्में विकसित करने में अधिक रुचि लेनी होगी।

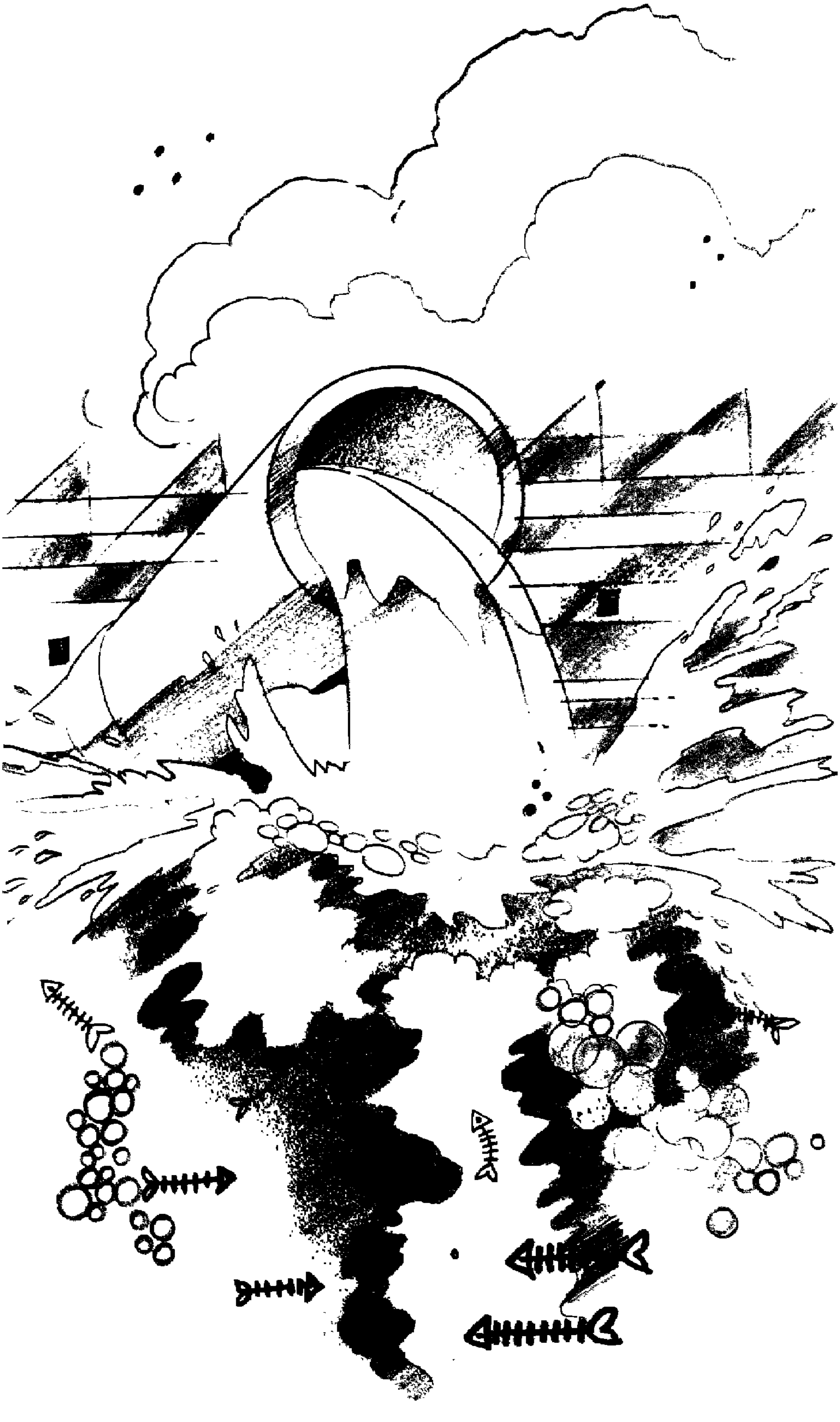
5

जल प्रदूषण–सर्वत्र व्याप्त

प्रकृति को इस दुनिया को आज का रूप देने में सदियां लग गयीं। उसने हमें जीने और मौजमस्ती करने के लिए अनेक प्रकार के पदार्थ दिए हैं। परंतु मनुष्य तो जैसे इसी सदी में विश्व का विनाश करने पर आमादा है। वह हर उपलब्ध स्रोत को तेजी से खर्च कर रहा है, पानी की धाराओं को अपंग कर रहा है, और उन्हें धीरे-धीरे कूड़ेदान में बदल रहा है। वास्तव में हमारा ग्रह ही एक ऐसा ग्रह है जहां 70 प्रतिशत पानी है और बाकी धरती है। परंतु पृथ्वी के इस केवल 30 प्रतिशत हिस्से पर रहने वाला मनुष्य पर्यावरण के प्रति अपनी लापरवाही की वजह से इस सारे 70 प्रतिशत पानी को संकट में डाल रहा है और इसे जहरीला बना रहा है। वह अपनी विनाश की नीति से बाज नहीं आ रहा है। मानव की गतिविधियों (प्रगति के नाम पर) और प्रकृति के बेशकीमती उपहार पानी पर उनके प्रभाव पर विश्वास करने के लिए उन्हें देखना, सुनना या पढ़ना होगा। हमारे जल संसाधनों की पवित्रता को नुकसान पहुंचाने वाले खास प्रदूषक हैं औद्योगिक अपशिष्ट, मलजल और कृषिजनित व्यर्थ पदार्थ। इस अध्याय में भूमिगत तथा सागर जल प्रदूषण के साथ-साथ औद्योगिक, शहरी तथा कृषिजन्य प्रदूषण पर चर्चा की जाएगी।

पानी में औद्योगिक प्रदूषक

जनस्वास्थ्य को अधिक महत्व देने से जल प्रदूषण को नियंत्रित करने की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है परंतु उद्योगों द्वारा जनित प्रदूषण को लगभग पूरी तरह नजरअंदाज किया जाता रहा है। ऐसा मान लिया गया है कि नदियां और तालाब कचरा फेंकने के सही स्थान हैं। हालांकि औद्योगिक शहरों में कुछ



उद्योगों को दंडित भी किया गया है, परंतु पानी की गुणवत्ता में आम गिरावट को मौन स्वीकृति भी दे दी गयी है। तथापि अब लोग पानी के प्रदूषण को लेकर चिंतित हैं।

औद्योगिक कार्यों से अनेक प्रकार के व्यर्थ पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उन्हें अक्सर आसपास के पानी में बहाया भी जाता है। पिछले चार दशकों में जितने भी उद्योग लगाए गये हैं, उन सबसे अनेक प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इनमें से कुछ अपशिष्ट जहरीले होते हैं, तो कुछ अपशिष्ट लम्बे अरसे तक अपना प्रभाव डालते रहते हैं, और बहुत से अपशिष्ट पदार्थ ऐसे भी हैं जिनके प्रभाव के बारे में अभी तक कोई जानकारी नहीं है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी विकसित हो रही है, नये-नये तरह के अपशिष्ट पदार्थ पैदा हो रहे हैं। इससे रासायनिक प्रदूषकों की रोकथाम बहुत कठिन हो रही है। उद्योग में 66,000 से भी अधिक प्रकार के यौगिक इस्तेमाल होते हैं, जिनमें से 2 प्रतिशत से कम की उनके दुष्प्रभावों के लिए जांच की गयी है। बहुत से ऐसे रसायन औद्योगिक अपशिष्ट बन जाते हैं, जो बस्ती से दूर परंतु खतरनाक कूड़ाघरों में फेंक दिए जाते हैं अथवा दबा दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए हालैंड की राइन नदी को 'यूरोप का सीवर' कहते हैं। जब यह राइन नदी हालैंड के तट पर पहुंचती है, उस समय तक यह 20 प्रतिशत मलजल और औद्योगिक कचरा बन चुकी होती है। अकार्बनिक कचरे में शामिल है अम्ल, क्षार, रंग, भारी धातुएं, विषैले पदार्थ (जैसे साइनाइड) और गैसीय प्रदूषक। कार्बनिक यौगिक भी औद्योगिक प्रदूषण का बहुत बड़ा हिस्सा होते हैं। नीचे दी गयी सारणी से विभिन्न उद्योगों से निकले अपशिष्ट पदार्थों की जानकारी प्राप्त होती है।

सारणी-2

उद्योगों द्वारा उत्सर्जित तरह-तरह के अपशिष्ट

क्र. सं.	*उद्योग*	*अपशिष्ट के मुख्य घटक*
1.	ऐसीटेट रेयान	ऐसिटिक अम्ल
2.	एल्यूमीनियम ऐनोडाइसिंग	एल्यूमीनियम, क्रोमियम
3.	एल्यूमीनियम उत्पादन	फ्लोराइड्स, भारी धातुएं और लाल कीचड़
4.	बैटरी निर्माण	सीसा, खनिज अम्ल
5.	विरंजक उद्योग	सल्फाइड, स्वतंत्र क्लोरीन
6.	अल्कोहल उद्योग	शर्करा, खनिज अम्ल
7.	सिरेमिक यंत्र	फ्लोराइड्स

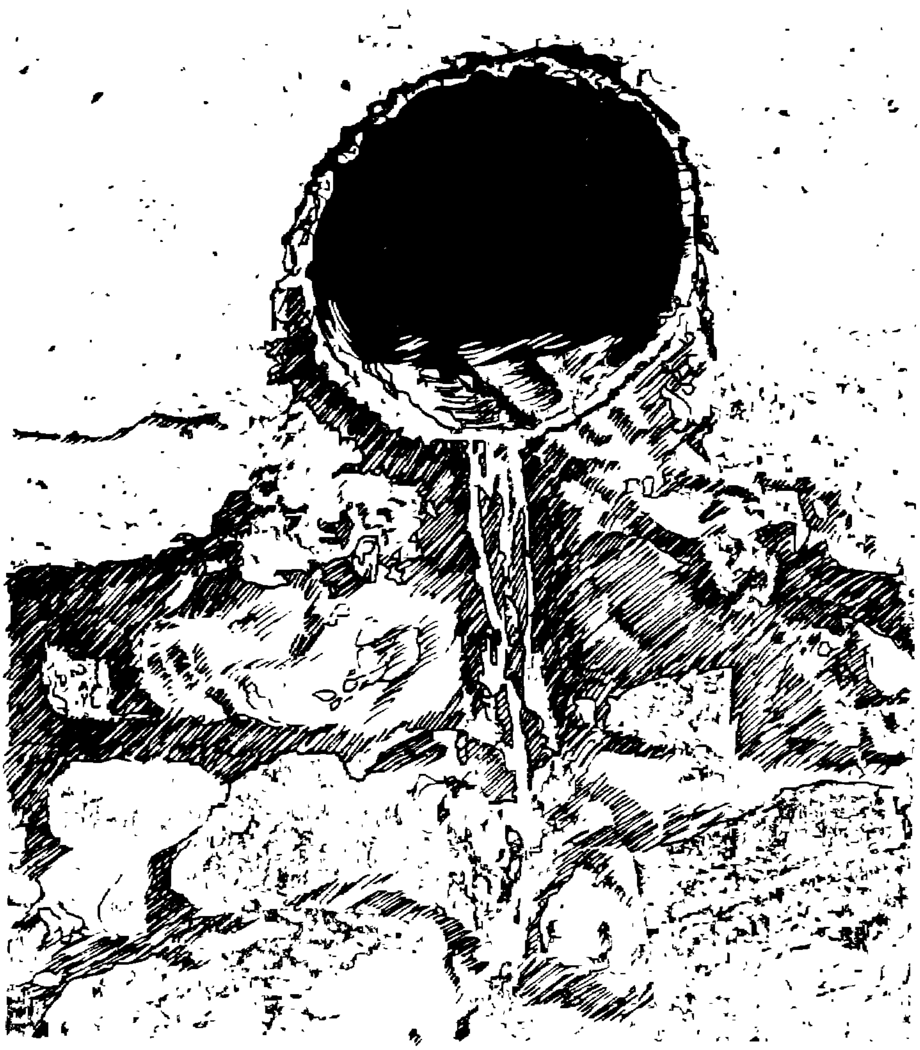
8.	रसायन निर्माण	खनिज अम्ल, फिनाल, अमोनिया, कार्बनिक अम्ल, टारटरिक अम्ल, नाइट्रोजन यौगिक
9.	चाकलेट उद्योग	शर्करा
10.	क्रोम टैनिंग	क्रोमियम
11.	तांबा-अम्ल मार्जन	तांबा, खनिज अम्ल
12.	सूती वस्त्र उद्योग	क्षार
13.	कपास केआरिंग	क्षार
14.	डेयरी	प्रोटीन, वसा, शर्करा
15.	शराब उद्योग	कार्बनिक अम्ल
16.	रंजक उद्योग	अम्ल, क्षार, रंग
17.	रंग निर्माण	फिनाल यौगिक, रंग, भारी धातुओं के अम्ल
18.	खाने वाले तेलों का शोधन	वसीय अम्ल, साबुन, तेल, क्षार
19.	इलेक्ट्रोप्लेटिंग (विद्युत लेपन)	तांबा, क्रोमियम, निकल, कैडमियम, जस्ता और चांदी
20.	इंजीनियरिंग उद्योग	वसा, तेल और ग्रीस (चिकनाई)
21.	विस्फोटक निर्माण	नाइट्रोजन यौगिक, खनिज, अम्ल
22.	उर्वरक संयंत्र	फास्फेट्स, फ्लोराइड्स, अमोनिया
23.	खाद्य संसाधन	स्टार्च
24.	कलई उद्योग	जस्ता
25.	गैस और कोक निर्माण	अमोनिया, साइनाइड्स, सल्फाइड्स, फिनाल
26.	कांच पर अम्ल लेखन	फ्लोराइड्स
27.	लौह अम्ल-मार्जन	लोहा, खनिज अम्ल
28.	वस्त्र धुलाई	वसा, तेल और ग्रीस
29.	चमड़ा बनाना	कार्बनिक अम्ल
30.	धातुओं की सफाई	साइनाइड्स
31.	धातु प्रगालक	फ्लोराइड्स
32.	पेंट बनाना	सीसा, कार्बनिक पदार्थ, घोलक
33.	कागज के कारखाने	क्लोरीन, सल्फाइड
34.	पेंसिलीन निर्माण	फार्मल्डीहाइड
35.	वस्त्रों का परआक्साइड से विरंजन	हाइड्रोजन पराक्साइड
36.	पीड़कनाशी निर्माण	पीड़कनाशी तथा दूसरे जहरीले पदार्थ, खनिज अम्ल
37.	पैट्रोलियम उद्योग	हाइड्रोकार्बन्स
38.	पेट्रोलियम शोधन	हाइड्रोकार्बन्स, फिनाल, वसा, तेल और ग्रीस
39.	फोटो नक्काशी	खनिज अम्ल
40.	फोटोग्राफी	चांदी
41.	अचार बनाना	एसिटिक अम्ल

42.	लुगदी के कारखाने	मर्कैप्टंस
43.	राकेट मोटर परीक्षण	हाइड्रोजन पराक्साइड
44.	लकड़ी के कारखाने	टैनिक अम्ल
45.	धुएं के साथ निकलने वाली गैसों का अपमार्जन	फ्लोराइड्स
46.	भेड़ डिपिंग (मेष निमज्जन)	आर्सेनिक, फिनाल
47.	चीनी की मिल	शर्करा
48.	मिठाई बनाना	शर्करा
49.	संश्लेषित डिटरजेंट	अम्ल, क्षार, कार्बनिक तत्व
50.	संश्लेषित राल निर्माण	फिनाल, फार्मल्डीहाइड
51.	संश्लेषित रबड़ फैक्ट्री	हाइड्रोकार्बन्स
52.	चमड़ा शोधन	सल्फाइड्स, क्रोनियम, फिनाल, टैनिक अम्ल
53.	चारकोल शोधन	फिनाल
54.	वस्त्र विरंजन	स्वतंत्र क्लोरीन, सल्फाइड्स
55.	वस्त्र उद्योग	खनिज अम्ल, वसा, तेल, ग्रीस, क्षार, रंग, आदि
56.	ट्रांजिस्टर उद्योग	फ्लोराइड्स
57.	विस्कोस फिल्म निर्माण	सल्फाइट्स
58.	विस्कोस धागों का निर्माण	सल्फाइड्स, जस्ता, सल्फ्यूरिक अम्ल
59.	दीवार पर लगाने के कागज बनाना	स्टार्च
60.	लकड़ी संसाधन	शर्करा
61.	लकड़ी की लुगदी का संसाधन	क्षार और सल्फाइड्स
62.	ऊन की धुलाई	क्षार, वसा, तेल और ग्रीस

प्रमुख कार्बनिक तथा अकार्बनिक प्रदूषक पदार्थ हैं अम्ल, क्षार, कार्बोहाइड्रेट्स, रंग, वसा, साबुन, मोम, जहरीली धातुएं, गैसें, प्रलंबित पदार्थ, तेल और पीड़कनाशी। इसके साथ ही हैं रेडियोसक्रिय पदार्थ और गर्म अपशिष्ट जो पानी में गिरने पर उसे गर्म कर देते हैं। जैविक प्रदूषक हैं जीवाणु, विषाणु, पौधे और जंतु। इन प्रदूषकों का मनुष्य, मछलियों आदि के स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे आने वाले पृष्ठों में बताया गया है।

अम्ल : कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों ही प्रकार के अम्ल नदियों में औद्योगिक अपशिष्ट के रूप में फेंके जाते हैं। अम्लीय कचरे का प्रमुख भाग है सल्फ्यूरिक अम्ल। इसके साथ नाइट्रिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और फास्फोरिक अम्ल भी होते हैं।

ये अम्ल अपनी क्षरण क्रियाशीलता के कारण धातु अथवा कंक्रीट की



संरचनाओं, पम्प इत्यादि को नुकसान पहुंचाते हैं। और जब ये अम्ल नदियों के पंक और कीचड़ के संपर्क में आते हैं, तो हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनती है। ये अम्लीय प्रदूषक सूक्ष्मजीवों को मारकर नदियों के पानी की स्वपरिशोधन प्रक्रिया को रोक देते हैं। पानी के पी एच में अचानक परिवर्तन से मछलियों तथा दूसरे जलजीवों पर काफी हानिकाक प्रभाव पड़ता है। अम्ल मछलियों और जल-जीवों के लिए प्राणघातक सिद्ध होता है।

क्षार : नदियों में क्षारों की उपस्थिति से पानी का पी एच बदल जाता है जो उसकी प्राकृतिक प्रतिरोधक प्रणाली को नष्ट कर देता है। अम्ल की तरह क्षार भी जीवाणुओं तथा अन्य सूक्ष्मजीवों को नष्ट करके पानी की स्वपरिशोधन प्रक्रिया

को रोक देते हैं। पानी का पी एच अचानक बढ़ने से मछलियों तथा दूसरे जल जीवों का जीवन प्रभावित होता है। तेज क्षार की उपस्थिति में मछलियों के गलफड़ों का स्राव जम जाने से सांस लेने में कठिनाई होती है।

प्रलंबित अशुद्धियां : प्रलंबित अघुलनशील पदार्थ आमतौर पर पाए जाने वाले प्रमुख प्रदूषकों में से एक है। यह प्रलंबित पदार्थ मलजल तथा अधिकांश औद्योगिक कचरे वाले पानी में मौजूद होता है। ये प्रलंबित पदार्थ स्वयं तो कोई नुकसान नहीं पहुंचाते, परंतु वे जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया को कम करके और नितलस्थ जीवों को ढंककर नदी की स्वपरिशोधन क्षमता में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। और, प्रलंबित पदार्थ में मौजूद अपघर्षी पदार्थ मछलियों के गलफड़ों को अवरुद्ध करके उन्हें मार सकता है। नदियों की तलहटी में जमा होकर यह प्रलंबित पदार्थ पौधों और जानवरों के जीवन को नुकसान पहुंचाता है। कोयले को धोने से उत्पन्न काला और अपारदर्शी पदार्थ नदियों के पानी का रंग बिगाड़कर उसे अधिकांश उपयोग के लायक नहीं रहने देता। गर्म मौसम में कार्बनिक पदार्थों से युक्त प्रलंबित पदार्थ सड़ने लगता है। इसके फलस्वरूप गैस से भरे हुए ठोस आप्लावक पदार्थ सतह पर आ जाते हैं, और तैरता हुआ बदबूदार कीचड़ बनाते हैं।

गैसीय प्रदूषक : इस श्रेणी में अमोनिया, स्वतंत्र क्लोरीन, हाइड्रोजन सल्फाइड्स, ओजोन और फोस्फीन जैसी गैसें शामिल हैं। सांस के साथ अमोनिया की काफी मात्रा शरीर में पहुंचने पर कंठद्वार में ऐंठन होती है जिससे बाद में मृत्यु भी हो सकती है। गलफड़ों से होकर मछलियों के शरीर में पहुंचने पर अमोनिया जहर का काम करती है। पानी में अधिक मात्रा में स्वतंत्र क्लोरीन की उपस्थिति अवांछनीय होती है क्योंकि यह एक तेज प्रदाहक है। क्लोरीन से फेफड़ों में सूजन हो जाती है जिससे मृत्यु हो सकती है। यह जल जीवों को मारती है, धातुओं तथा इमारतों का क्षरण करती है।

हाइड्रोजन सल्फाइड से निकलने वाली बदबू नदियों और पानी की धाराओं के नजदीक जाने पर महसूस की जा सकती है। यहां तक कि पानी में हाइड्रोजन सल्फाइड की 0.001 पी पी एम मात्रा से भी सड़े हुए अंडे की बदबू आती है। यह स्थानीय प्रदाहक है और इसकी उपस्थिति में सांस लेने में दिक्कत होती है। इससे मनुष्यों में नेत्रश्लेष्मला शोध (आंखों का लाल हो जाना), श्वसन मार्ग में जलन तथा फेफड़ों में सूजन हो सकती है।

तेल : ईंधन के लिए कोयले के बदले में तेल के प्रयोग से प्रदूषण की समस्या और बढ़ गयी है। तेल पानी की सतह पर फैल जाता है और पानी में

आक्सीजन के प्रवेश में रुकावट पैदा करता है। यह पता चला है कि तेल मछलियों के गलफड़ों को ढंककर उनमें सांस लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पानी की लहरें और हवा तेल को किनारों की ओर धकेल देती हैं जिससे समुद्री तट गंदा हो जाता है और तैरना या नहाना असंभव हो जाता है।

जहरीली धातुएं : इस श्रेणी में पारा, कैडमियम, सीसा, क्रोमियम, तांबा और आर्सेनिक जैसी धातुएं शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक के बारे में अलग-अलग चर्चा की जाएगी।

अभी हाल ही में लोग वातावरण में पारे की विषाक्तता के खतरे के प्रति जागरूक हुए हैं। प्राकृतिक जल में तो एक अरब भाग में पारे के केवल कुछ ही अंश होते हैं। क्लोरीन बनाने में जब लवण जल के विद्युत अपघटन में पारे के इलेक्ट्रोड का प्रयोग किया जाता है तब उत्पन्न कचरे के रूप में पारा जीवमंडल में प्रवेश करता है। सिर्फ तेल शोधन कारखाने ही नहीं, बल्कि प्लास्टिक और बैटरी बनाने वाले उद्योग भी पारा प्रदूषण में भागीदार हैं।

पारे के प्रभाव के खतरे के संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी में सबसे पहले उस समय पता चला जब हैट बनाने वालों में आवाज की कंपकंपाहट तथा अस्पष्ट उच्चारण जैसे अजीब लक्षण दिखाई दिए। तभी से इस मुहावरे 'हैट वालों जैसा पागलपन' का जन्म हुआ। पारे की अधिक मात्रा के कारण टोपी बनाने वालों में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में खराबी की संभावनाएं बढ़ गयी थीं।

1950 के दशक के आरंभिक वर्षों में जापान के मीनामाटा शहर में पारा विषाक्तता के कारण सैकड़ों लोग मर गये थे। छोटे से और सुंदर मीनामाटा शहर में उसी के नाम से 'मीनामाटा बीमारी' नाम की एक ऐसी बीमारी देखी गयी जो अनेक पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को खा गयी। प्रारंभ में 1950 में लोगों के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करने वाली इस बीमारी से 400 जानें गयीं। 40 वर्षों बाद यह बीमारी अभी भी होती है और अब तक इसकी वजह से 3000 लोगों को दिमागी क्षति हुई है। उनमें से लगभग 1,500 मर गये हैं और जो बदकिस्मत बचे हैं उनमें स्थाई अपंगता हो गयी है। इस बीमारी ने मां के गर्भ में पल रहे बच्चों तक को नहीं छोड़ा। 1950 से 1960 के बीच में घटी यह दुखद घटना लोगों के शरीर में अधिक मात्रा में पारा जमा हो जाने से हुई थी। इन व्यक्तियों के शरीर में पारा पारे से संदूषित खाड़ी के पानी की जीवित बची मछलियों को खाने से आया था। पास के एसिटल्डीहाइट बनाने वाले उद्योग ने, जिसमें काफी मात्रा में पारे का इस्तेमाल किया जाता था, पारायुक्त अपशिष्ट

पदार्थ खाड़ी में बहाकर उसे प्रदूषित किया था।

पारे का सबसे जहरीला यौगिक है मिथाइल मरकरी। जलीय वातावरण में कुछ परिस्थितियों में सूक्ष्मजीव पारे के अधिकांश अकार्बनिक यौगिकों को मिथाइल मरकरी में बदल देते हैं। मछली सीधे अपने गलफड़ों से मिथाइल मरकरी को अवशोषित कर लेती है या उसे खा लेती है। पानी में तैरने वाले सूक्ष्मदर्शी पादप और जंतु भी मिथाइल मरकरी को अवशोषित कर लेते हैं। इन पौधों और जंतुओं को खाने से मिथाइल मरकरी मछलियों के शरीर में पहुंचता है। बड़ी मछलियां जब इन छोटी मछलियों को खाती हैं तो उनके शरीर में पारे की मात्रा अधिक हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप मछली में अपने आसपास के पानी की तुलना में लाखों गुना अधिक पारा होता है। लगातार इन बड़ी मछलियों को खाने वाले मनुष्य में पारे की मात्रा मारक सीमा तक पहुंच जाती है। पारा मस्तिष्क में घुसकर वहीं जमा हो जाता है और हानि पहुंचाता है।

शरीर में जमा पारा गुर्दों को भी नुकसान पहुंचाता है और जन्म संबंधी दोष पैदा करता है जिससे गर्भवती महिला के गर्भ में पल रहा शिशु भी प्रभावित होता है। पारा यकृत के कार्य को भी प्रभावित करके मधुमेह तथा उच्चरक्तचाप को जन्म दे सकता है।

हमारी नदियों में कैडमियम और आर्सेनिक जैसी धातुओं की मात्रा बढ़ रही है। विषाक्तता में पारे के बाद कैडमियम का स्थान है। कैडमियम मुख्य रूप से इलेक्ट्रोप्लेटिंग (विद्युत लेपन) उद्योग से निकलता है। कैडमियम गुर्दे, यकृत और थायरायड में जमा हो जाता है और उच्चरक्तचाप, ऐंठन, मतली, उल्टी और दस्त जैसे रोग पैदा करता है।

कैडमियम प्रलंबित कणों द्वारा अवशोषित होकर पानी की तलहटी में जमा हो जाता है। संभवतया इसी कारण प्रदूषित नदियों में भी कैडमियम की मात्रा नहीं ज्ञात हो पाती है, परंतु फिर भी इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, 1947 में जापान के टोयोमा शहर में 'इटाई-इटाई' नामक बीमारी का कारण सिंचाई की नहरों के पानी में मौजूद कैडमियम को बताया गया था। यह कैडमियम पास की जस्ते की खदान से जिंसू नदी में बहाया गया था। हड्डियों में विकृति लाने वाली इटाई-इटाई (आउच-आउच) बीमारी को यह नाम इसलिए मिला क्योंकि इस बीमारी में हड्डियों के मुलायम हो जाने से अनेक हड्डियां टूट जाती हैं। अभी तक मानव पर आर्सेनिक के विषैले प्रभाव की जानकारी नहीं है। चूंकि ऊतकों में आर्सेनिक के विरुद्ध सहनशक्ति विकसित हो जाती है, इसलिए इससे मृत्यु तभी होती है, जब आर्सेनिक की अधिक मात्रा शरीर में पहुंचे।

इसके बावजूद आर्सेनिक मछलियों के लिए खतरनाक है। आर्सेनिक पानी में शीप डिपिंग (मेष निमज्जन) अपशिष्टों के छोड़े जाने से और कवकनाशियों तथा खरपतवारनाशियों के उपयोग के कारण पहुंचता है, इसलिए यह आनुवंशिकता की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यह लगातार जमा होते जाने वाला, प्रभावशाली जीवद्रव्यी जहर है जो दस्त, परिधीय तंत्रिकाशोध, नेत्र श्लेष्माशोथ, और उच्च कीटोनमयता तथा फेफड़े एवं त्वचा के कैंसर जैसी बीमारियों को जन्म देता है।

हमारे अधिकांश उद्योग अपने अपशिष्टों को जलाश्यों में अथवा खेतों में बहा देते हैं। मानव स्वास्थ्य पर इसके हानिकारक प्रभावों की उन्हें जरा भी चिंता नहीं होती है। धातु-विषाक्तता के लक्षण बहुत बाद में दिखाई देते हैं। भारत की मौजूदा परिस्थितियों में इन लक्षणों को धोखे से गरीबी के लक्षण मान लिया जाएगा। मीनामाटा जैसी किसी अन्य गंभीर दुर्घटना से बचने के लिए खतरनाक अपशिष्टों के इस तरह छोड़े जाने पर लगातार चौकसी रखनी होगी।

सीसा भी एक प्रदूषक है जो मुख्यतया बैटरी बनाने वाले और पेंट उद्योगों से निकलता है। सीसे के पाइपों तथा सीसे के यौगिकों से मजबूती प्राप्त प्लास्टिक के पाइपों से भी यह जल आपूर्ति में पहुंच जाता है। सीसा तथा आर्सेनिक दोनों ही क्रोमोसोमों को नष्ट कर देते हैं; और इस प्रकार वंशानुगत प्रक्रिया में रुकावट डालते हैं। बच्चों के रक्त में यदि सीसे की मात्रा 40 माईक्रोग्राम प्रति 100 ग्राम रक्त से अधिक हो तो वह उनके मस्तिष्क को क्षति पहुंचाती है।

1977 में आंध्रप्रदेश के मालापाडू गांव में कई गायों की मृत्यु हुई। इन गायों ने पास ही बहती नदी की धारा से पानी पिया था जिससे उन्हें दस्त लग गये थे और कुछ ही दिनों में उन्हें लकवा मार गया था और फिर उनकी मृत्यु हो गयी । यह पाया गया कि नदी की वह धारा सीसे के यौगिकों से प्रदूषित थी जिसकी वजह से सीसा-विषाक्तता हुई। सौभाग्यवश गांव वालों को सही वक्त पर उस पानी को न इस्तेमाल करने की चेतावनी दे दी गयी ताकि गायों जैसी उनकी दशा न हो।

क्रोमियम के लवणों का उद्योगों में तथा क्षरणरोधी पदार्थ के रूप में बहुतायत से इस्तेमाल होता है। उद्योगों के कचरे के साथ वे पानी में पहुंच जाते हैं। क्रोमियम दो रूपों में पाया जाता है। षटसंयोजी और त्रिसंयोजी। मानव और जलीय जीवों के लिए षटसंयोजी रूप जहरीला पाया गया है।

विद्युत लेपन उद्योग में तांबे का बहुतायत में इस्तेमाल होता है। शैवालों तथा डायटम की वृद्धि रोकने के लिए हौदों में भरे पानी के उपचार के लिए

कॉपर सल्फेट तथा कॉपर (तांबे) के यौगिकों का अधिक इस्तेमाल किया जाता है। कॉपर अत्यधिक जहरीला होता है और उसके प्रभाव के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है।

ऊपर बताई गयी धातुएं मछलियों तथा अन्य जल जीवों के लिए विषाक्त होती हैं। भारी धातुओं के आयंस मछलियों के गलफड़ों के श्लेष्मा स्राव में प्रवेश कर जाते हैं। गलफड़ों की पटालिकाओं के बीच के स्थान में मौजूद ये अवक्षेप गलफड़ों के तंतुओं के हिलने-डुलने और श्वसन में बाधा डालते हैं। अनेक रिपोर्टों से यह पता चला है कि 10 करोड़ अंश पानी में कॉपर के लगभग 2 अंश स्टिकल बैक तथा उस जैसी अन्य प्रजातियों के लिए प्राणघातक होते हैं। निकल, सीसा और जस्ते की प्राणघातक मात्रा लगभग 1 अंश प्रति दस लाख अंश होती है। चूंकि धातुएं नष्ट न होने वाला जहर होती हैं इसलिए लंबे समय तक इन्हें समुद्रों में फेंकते जाना बहुत खतरनाक साबित हो सकता है, जो कि वातावरण में आक्सीजन के उत्पादन तथा सागर के जलीय जीवों को प्रभावित कर सकती हैं।

गर्मी एक अन्य औद्योगिक जल प्रदूषक है। बिजलीघरों, परमाणु बिजलीघरों तथा अन्य निर्माण इकाइयों को ठंडा रखने के लिए काफी पानी की आवश्यकता होती है। बिजलीघरों से निकले गर्म अपशिष्ट नदियों या नहरों के तापमान को कई अंश बढ़ा देते हैं। उद्योगों को चलाने के लिए जितना भी पानी चाहिए उसमें से करीब 80 प्रतिशत उन्हें ठंडा करने के काम आता है। परमाणु बिजलीघर संयंत्र में उत्पन्न 50 प्रतिशत गर्मी पानी (अधिकतर महासागरों) को दे देते हैं। शराब उद्योगों से भी गर्म अपशिष्ट निकलते हैं जिनका तापमान $60\text{-}80^0$ सेल्सियस तक होता है।

तापीय प्रदूषण का मुख्य प्रभाव जलीय जीवों, विशेष रूप से मछलियों पर होता है। सतही जल अनेक प्रकार की पादप तथा प्राणिजातियों का घर होता है। ये पादप तथा प्राणिजातियां एक विशिष्ट प्रकार के वातावरण में रहती हैं। पानी के तापमान को पर्यावरण का प्रमुख गुण माना जाता है क्योंकि यह पानी में घुली हुई आक्सीजन की मात्रा, पी एच, जैव रासायनिक प्रतिक्रिया की दर और जलीय जीवों की शारीरिक क्रियाशीलता को प्रभावित कर सकता है।

मछलियों की अधिकांश प्रजातियां काफी सीमा तक पानी के बदले तापमान के अनुसार अपने को ढाल लेती हैं, बशर्ते तापमान धीरे-धीरे बदले। तापमान में तेजी से बदलाव जैसे कि अचानक तापमान का बढ़ना या घटना अक्सर हानिकारक होता है। तापमान मे परिवर्तन न केवल मछलियों बल्कि सारी जलीय परिस्थितिकी को प्रभावित करता है। यदि तापमान में परिवर्तन छोटे सूक्ष्म जीवों

की किस्मों और उनकी संख्या को प्रभावित करता है तो हो सकता है कि मछलियों को सही वक्त पर उचित भोजन न मिले। रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता उच्च तापमान पर बढ़ जाती है और वे ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं। परिणामस्वरूप रोगोत्पादक जीव मछलियों पर जबरदस्त हमला करके उन्हें अधिक संख्या में मार देते हैं। यदि इसी प्रकार एक या दो प्रजातियां समाप्त हो जाएं तो हो सकता है कि पारिस्थितिकी में इतनी विभिन्नता न रह जाए कि वह क्षति की प्रतिपूर्ति कर सके।

पानी में मलजल प्रदूषण

जब से हमने अपनी नदियों तथा अन्य जल स्रातों में मलजल बहाना शुरू किया है तब से जल प्रदूषण एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। पिछले 50 सालों में इस समस्या ने और अधिक गंभीर रूप से लिया है, विशेष रूप से लगातार बढ़ती आबादी के साथ साथ बढ़ते प्रदूषण के कारण। हमारे प्राकृतिक जल स्रोत तो गिनती में उतने ही रहे जितने थे, परंतु इनमें गिराई जाने वाले मल पदार्थों की मात्रा कई गुना बढ़ गयी है। इसके फलस्वरूप पानी की गुणवत्ता में गिरावट आई है। जलजन्य रोगों की संख्या तथा मछलियों एवं अन्य जल जीवों को होने वाली क्षति बढ़ी है।

किसी भी शहर को पानी की आपूर्ति दूर से होती है, मगर मलजल



नजदीकी जलस्रोत में गिराया जाता है। मलजल में उपस्थित आक्सीकरण और खमीरीकरण करने वाले पदार्थ, जिस पानी में मलजल गिरता है उसमें घुली हुई आक्सीजन की मात्रा को कम कर देते हैं। आक्सीजन की कमी से तेज बदबू उठती है। अत्यधिक मात्रा में प्रलंबित पदार्थों की उपस्थिति गंभीर समस्याओं को जन्म देती है क्योंकि यह नदी की तलहटी में अथवा बंधिकाओं के पीछे कीचड़ के रूप में जमा हो जाता है। जब प्रलंबित पदार्थ अधिक कार्बनिक किस्म का हो तो इसमें सड़न प्रारंभ हो जाती है। इसके फलस्वरूप बदबूदार ठोस पदार्थ गैसों की मौजूदगी के कारण सतह पर तैरने लगता है और दुर्गंध फैलाता है। प्रलंबित पदार्थ में यह प्रवृत्ति होती है कि वह पानी की धारा पर छा जाते हैं जिससे मछलियों के अंडे देने में बाधा पड़ती है और मछलियों का आहार बनने वाले अन्य जीवों की संख्या भी कम हो जाती है। आसानी से सड़ने वाले अनेक प्रकार के पदार्थों की उपस्थिति मल जीवाणुओं की वृद्धि की बहुत ही अच्छी माध्यम होती है। ये रोग पैदा करने वाले जीवाणु हैजा, आंत्रज्वर और शिगेला पेचिश जैसी बीमारियां पैदा करते हैं। लंदन के इतिहास में एक मजेदार उदाहरण मौजूद है। मलजल ने टेम्स नदी को मैले में बदल दिया था जिसकी वजह से 1849 और 1853 में हैजे के प्रकोप से 20,000 लोगों की मृत्यु हुई। उसी दौरान अमेरिका के कई शहरों में आंत्रज्वर की महामारी फैली थी।

जल में कृषि प्रदूषक

केवल मलजल ही सतह के जल में अधिक पोषक तत्वों का स्रोत नहीं है। खेती में प्रयुक्त होने वाली आधुनिक तकनिकों तथा अनेक प्रकार के संश्लेषित उर्वरकों और पीड़कनाशियों ने भी पर्यावरण को बिगाड़ने में काफी योगदान दिया है। विशेषकर इससे जल प्रदूषण बढ़ा है। वर्षा के कारण मिट्टी से रासायनिक उर्वरक अक्सर घुल जाते हैं। वे अन्ततः नदी की धाराओं और नदियों में पहुंच जाते हैं जहां वे शैवालों को उसी प्रकार का पोषण देते हैं जिस तरह खेतों में किसान की फसलों को पोषण देते हैं। इस श्रेणी के तीन प्रमुख प्रदूषक हैं—उर्वरक, पीड़कनाशियों तथा जानवरों के व्यर्थ पदार्थ।

हाल के वर्षों में उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा है। उर्वरकों में प्रायः पौधों के एक अथवा एक के अधिक पोषक पदार्थ होते हैं—जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम। जरूरत से ज्यादा उर्वरकों के प्रयोग से फालतू उर्वरक घुल जाते हैं और वे अंत में पानी के स्त्रोतों में पहुंच जाते हैं। उर्वरकों में से नाइट्रेट्स नदियों

और झीलों पर अधिक दुष्प्रभाव डालते हैं। गैलीली सागर (किन्नेरेट झील) जिसमें जॉर्डन नदी गिरती है, इसराइल को एक-तिहाई पानी की आपूर्ति करता है। जॉर्डन के आसपास के कृषि क्षेत्रों से नाइट्रेट्स उस झील में पहुंचते रहे हैं और यूट्रोफिकेशन करते हैं। यही बात मलजल के साथ आने वाले डिटर्जेंट फास्फेटों के साथ लागू होती है जो टूटकर फास्फोरस बनाते हैं। फास्फेट्स के साथ मिलकर नाइट्रेट्स की अधिक मात्रा यूट्रोफिकेशन पैदा करती है। यूट्रोफिकेशन वह प्रक्रिया है जिसमें पोषक लवणों का संवर्धन होता है और विपुल मात्रा में विभिन्न मात्रा की पादप वनस्पतियां जन्म लेती हैं। इस प्रक्रिया को कभी-कभी 'शैवाल-बहार' भी कहते हैं—उस समय पादप वनस्पतियों में शैवालों की बहुलता होती है। ये वनस्पतियां बाद में सड़कर दुर्गंध पैदा करती हैं जिसके फलस्वरूप आक्सीजन की मांग बढ़ जाती है। अमेरिका की झीलों और नदियों में बहने वाला 50-70 प्रतिशत फास्फोरस प्रतिवर्ष फास्फेट डिटर्जेंटों के विभाजन से आता है। यूरोप की कोन्र-टैन्स झील भी इसी समस्या का शिकार है जहां 1920 से फासफोरस की मात्रा में 2500 प्रतिशत की वृद्धि ने आक्सीजन की मात्रा दो-तिहाई घटा दी है।

गाय-भैसों तथा मुर्गियों की संख्या में वृद्धि भी जल प्रदूषण का कारण रही है। गाय-भैंसों के बाड़ों तथा मुर्गी फार्मों की धुलाई से निकले पानी में फास्फेट, कार्बनिक पदार्थ, जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव होते हैं जो अनेक वर्षों के पश्चात यूट्रोफिकेशन पैदा करते हैं। कार्बनिक पदार्थों के कारण पानी में दुर्गंध आने लगती है और यह जीवाणुओं (रोग पैदा करने वाले जीवों सहित) की वृद्धि का प्राकृतिक माध्यम बन जाता हैं

भूमिगत जल में प्रदूषक

प्रदूषण नामक राक्षस को नदियों, झीलों और सतही जल के अन्य स्रोतों को प्रदूषित करके कभी तसल्ली नहीं होती है। वह अपने पंजे जमीन के भीतर के पानी तक फैला देता है। कारखानों के परिसरों में अनेक वर्षों तक भरा हुआ तरल अपशिष्ट रिसकर नजदीक के कुओं में पहुंच जाता है। इसका सबसे सटीक उदाहरण है शराब के कारखाने। तमिलनाडु और महाराष्ट्र के कई हिस्सों में कुएं इसी प्रकार काफी क्षतिग्रस्त हुए हैं। इनको खराब करने में दूसरा प्रमुख भागीदार है विद्युत लेपन उद्योगों का कचरा जो अक्सर कारखाने के परिसर में ही इकट्ठा किया जाता है। हालांकि यह कचरा उद्योगों के परिसर में इकट्ठा किया जाता है,

परंतु वह मिट्टी से रिसकर पास के कुओं को अत्यधिक प्रदूषित कर देता है।

सबसे प्रमुख जोखिम है अपशिष्टों का धरती पर उत्सर्जन। जब उद्योगों को अपना कचरा फेंकने के लिए जल के स्रोत नहीं मिलते हैं तब वे अपना अपशिष्ट सीधे जमीन पर बहा देते हैं। यह बहता हुआ अपशिष्ट निचले क्षेत्रों में जमा हो जाता है, और साथ-साथ भूमिगत जल को भी खराब करता है। यह अपशिष्ट सड़कों के किनारे के गड्ढों में भी इकट्ठा हो जाता है और दुर्गंध फैलाता है। जिन क्षेत्रों में चमड़ा शोधन कारखाने तथा काफी कपड़ा मिलें एक स्थान पर हैं, वहां ऐसे दृश्य आसानी से देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए तमिलनाडु में अम्बूर में ऐसे दृश्य आम हैं।

जो भी उस क्षेत्र से होकर गुजरता है वह सड़क के दोनों किनारों पर इन रंगीन झागदार अपशिष्टों को गड्ढों में भरा हुआ देख सकता है जो काफी बदबू फैलाते हैं। अपशिष्टों से भरे हुए ये गड्ढे और कृषि योग्य जमीन पर छोटी-छोटी नालियों के रूप में बहता हुआ अपशिष्ट लगभग 1000 कुओं को बेकार कर चुका है। ये कुएं पहले कभी सिंचाई और पीने के पानी के प्रमुख स्रोत हुआ करते थे। हजारों एकड़ उपजाऊ जमीन क्षारीय होकर खेती के लिए बेकार हो चुकी है। हजारों किलोमीटर क्षेत्र में भूमिगत पानी इतना अधिक प्रभावित हुआ है कि उन कुओं का पानी कड़ुवा (कसैला) हो गया है। यह बहुत दुख की बात है कि यह पानी चमड़ा शोधन के योग्य भी नहीं रह गया है, इसलिए इन क्षेत्रों के चमड़ा शोधकों को लारियों में भर कर दूर-दराज के क्षेत्रों से पानी लाना पड़ता है।

आंध्रप्रदेश में भूमिगत जल के प्रदूषण की समस्या इतनी गंभीर है कि हुसेन सागर क्षेत्र (हैदराबाद), विशेष रूप से डोमलगुडा, अशोक नगर और हिमायत नगर क्षेत्र के खुले कुओं और बोरिंग वाले कुओं के पानी से तेज बदबू आती है। इन कुओं के पानी में घुले हुए ठोस पदार्थों की मात्रा भी इतनी अधिक है कि इनका पानी पीने योग्य नहीं है। इस क्षेत्र में पानी की गुणवत्ता में इतनी गिरावट का कारण है उस क्षेत्र में उद्योगों से निकला अपशिष्ट पदार्थ। इस क्षेत्र के गांववासियों में फेफड़े और त्वचा के रोग पाए जाते हैं। इन सबका कारण है प्रदूषित भूमिगत जल।

एक अलग प्रकार का भूमिगत जल प्रदूषण है—भूमिगत जल में समुद्री पानी का मिल जाना। देश के तटीय क्षेत्रों में पंप करके अधिक मात्रा में भूमिगत जल निकालने के कारण यह एक आम घटना हो गयी है। इससे सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ है गुजरात में प्राद्वीपीय सौराष्ट्र का तटीय क्षेत्र। भारी क्षमता वाले

पंपों से अधिक भूमिगत पानी खींचने के कारण उन हिस्सों में गुहाओं से होकर समुद्र का पानी पहुंच गया है। निश्चय ही इससे अनेक वर्ग मीटर कृषि योग्य भूमि बरबाद हो गयी है। इस क्षेत्र के पानी में सागर के खारे पानी की मात्रा इतनी अधिक है कि उसमें दूध मिलाकर चाय नहीं बनाई जा सकती है। अधिक खारे पानी के कारण पानी में दूध मिलाते ही वह खट्टा हो जाता है।

अन्य प्रकार के प्रदूषण तथा भूमिगत जल के प्रदूषण में प्रमुख अंतर यह है कि भूमिगत जल के एक बार प्रदूषित हो जाने पर उसे न ठीक किया जा सकता है और न ही उपचारित किया जा सकता है; यह अपूर्णीय क्षति है। जहां सतह का पानी प्रदूषकों को बहा ले जाता है वहीं भूमिगत जल से प्रदूषकों को नहीं बहाया जा सकता है। परिणामस्वरूप इस तरह के प्रदूषण का प्रभाव अनंतकाल तक बना रहता है।

सागर में प्रदूषक

हममें से अनेक ऐसा मानते हैं कि सागर इतना विशाल है कि मानव की गतिविधियां उसे प्रदूषित नहीं कर सकती हैं। जहां कुछ समय पहले तक यह सच था वहीं आज सच नहीं है। बहुत सी प्रदूषण समस्याएं जो नदियों और जल धाराओं को प्रभावित करती हैं वही नदियों के मुहानों तथा तटीय क्षेत्रों, जहां धरती समुद्र से मिलती है, को भी प्रभावित करती हैं। प्रदूषकों का संचयी प्रभाव महासागर को भी प्रभावित करता है। यहां यह बताना जरूरी है कि समुद्रों का लगभग 85 प्रतिशत प्रदूषण धरती पर पैदा होता है। महासागर तो अंतिम कूड़ादान हैं जहां प्रदूषित नदियां अपने पानी के साथ प्रदूषकों को भी सागर में गिरा देती हैं। युगों से सागर प्रदूषकों को ग्रहण करके उन्हें अपने पारिस्थितिक तंत्र के अनेक पदार्थों में बदल देने वाले दरिद्रालय रहे हैं। परंतु सागरों में गिरने वाले लाखों करोड़ों टन मलजल और औद्योगिक कचरे ने सागरों की स्वपरिशोधन प्रकृति को परिवर्तित कर दिया है और इसमें पाए जाने वाले नाना प्रकार के जीवों का जीवन संकटग्रस्त हो गया है। थोर हायर्डाल अपने अभियान रा-2 के दौरान अटलांटिक महासागर के बीच में प्रदूषण को देखकर दंग रह गया था। उसने गहरे भूरे रंग के टार जैसे पदार्थ के बारीक बजरी जैसे टुकड़े सागर के कुछ भागों में देखे। उसने यह भी देखा कि महासागर के पानी का रंग साफ नीले रंग की बजाय गंदा, सलेटी हरे रंग का हो गया था और उससे ऐसा आभास होता है कि हम महासागर के मध्य में ना होकर एक बंदरगाह में हैं जहां शहरी नालों

का पानी आकर गिरता है। समुद्र का तटीय क्षेत्र और सागरों की सतह तेल की परतों तथा तेल की चिकनाई से बुरी तरह प्रभावित होती है। इसे अगले अध्याय में विस्तार से बताया गया है।

समुद्रों में केवल रसायनों से ही प्रदूषण नहीं होता है। प्लास्टिक के डिब्बे तथा मनुष्य द्वारा उत्पन्न अन्य कूड़ा-करकट भी सागर को प्रदूषित करता है। प्लास्टिक हाल ही में बना है। प्लास्टिक गैरअपघटनशील पदार्थ है। सागर भी अपनी प्राकृतिक शुद्धिकरण प्रक्रिया द्वारा उन्हें नष्ट नहीं कर पाते। कछुए और मछलियां प्लास्टिक को खाद्य पदार्थ समझकर निगल जाती हैं, और निगलने के पश्चात् दम घुटने से उनकी मृत्यु हो जाती है। 1986 में अमरिकी विज्ञान अकादमी ने यह पाया कि दुनिया भर के व्यापारिक जहाज कम से कम 6.6 टन कचरा हर साल समुद्रों में फेंकते हैं। 1972 में अमेरिका सहित अनेक देशों ने समुद्रों में प्लास्टिक फेंकने पर प्रतिबंध लगाने पर सहमति दी थी। परंतु इस समझौते में साधारण कूड़ा-करकट फेंकने पर विचार नहीं किया गया, जिसमें प्लास्टिक के अनेक पदार्थ होते हैं।

चालीस वर्ष पहले 'प्रदूषण' शब्द से भारत और दूसरे विकासशील देश अनभिज्ञ थे। विकसित देश भी 1950 के दशक में प्रदूषण के प्रति जागरूक हुए थे जब इंग्लैंड की टेम्स नदी अत्यधिक प्रदूषित और अनुपजाऊ हो गयी थी। हम इतने हादसों के बावजूद कोई सबक नहीं सीख पाए हैं और बिना सोचे-समझे नदियों में कूड़ा फेंकते जा रहे हैं—उसके परिणामों की परवाह किए बिना ही। इसके परिणामस्वरूप जिन नदियों को हम पूजनीय मानते थे, अब वे वैसी नहीं रही हैं बल्कि प्रदूषकों से भर गयी हैं जिसकी वजह से उनका पानी पीने तथा अन्य दूसरे कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं रह गया है। यह हमारी उत्तर और दक्षिण दोनों की नदियों के लिए सच है।

उत्तर भारत में गंगा नदी हिमालय पर्वत से निकलती है। इलाहबाद, कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, मुंगेर, सुल्तानगंज, भागलपुर, फरक्का और नाडिया से होकर गुजरते समय उसमें बहुत सा अनुपचारित मलजल और औद्योगिक कचरा मिल जाता है। अपने रास्ते में लाखों लोगों के नहाने से गंगा नदी और अधिक प्रदूषित होती जाती है। मुर्दा शरीर तथा पशुओं की लाशें अक्सर उसकी सतह पर तैरती नजर आ जाती हैं। ऐसा अनुमान है कि हर साल लगभग 30,000 लाशें गंगा के किनारे जलाई जाती हैं। राख और अधजली (या बिना जली) लाशें नदी में बहा दी जाती हैं, जो इसे सिर्फ एक नाला अथवा मलकुंड बना देती हैं।

कावेरी नदी की दर्दनाक दास्तान भी कुछ कम नहीं है। यह कर्नाटक के

पश्चिमी घाट से निकलकर और करीब 800 किलोमीटर का सफर तय करती हुई तमिलनाडु में गुजरते हुए पल्लीपलायम, इरोड और त्रिची से होकर बहती है और इन क्षेत्रों में मौजूद बहुत सारे रसायन, कागज और चीनी मिलों, शराब के कारखानों, वस्त्र संसाधन इकाइयों के कारण प्रदूषित हो जाती है। प्रतिदिन लगभग 11 करोड़ लीटर उद्योगों का अपशिष्ट कावेरी में गिरता है। इसके अतिरिक्त इसके रास्ते में स्थित बहुत सारी जगहों का लगभग 80 लाख लीटर अनुपचारित मलजल इसमें गिराया जाता है।

तमिलनाडु में लगभग 400 चमड़ा शोधन इकाइयां हैं। इनमें से 260 इकाइयां उत्तरी अर्कोट जिले में स्थित हैं। चमड़ा शोधन इकाइयों से काफी अधिक मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ पलार नदी (जो पहले पीने के पानी का मुख्य स्रोत थी) में डालने से वह एक नाला बन कर रह गयी है और इसे अब पझार (कचरे की नदी) कहा जाता है। लगभग 20,000 हेक्टेयर कृषि भूमि अब खेती के लायक नहीं रह गयी है। भूमिगत पानी के खारे हो जाने से अब समस्या और भी गंभीर हो गयी है।

यमुना नदी की दुख भरी हालत का तो शब्दों में बयान ही मुश्किल है। दिल्ली में प्रतिदिन लगभग 20 करोड़ लीटर मलजल पैदा होता है और इसका लगभग आधा भाग बिना किसी उपचार के खुले नालों से होकर यमुना नदी में बहा दिया जाता है। इस मलजल के साथ-साथ बड़े और छोटे उद्योगों से (जिनकी संख्या लगभग 70,000 है) कई लाख टन औद्योगिक अपशिष्ट भी यमुना में रोज गिराया जाता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार वजीराबाद से पहले यमुना का पानी उपचार के बाद पीने लायक हो जाता है, परंतु नजफगढ़ के बाद यह एक नाले का रूप ले लेती है और अत्यधिक प्रदूषित हो जाती है।

प्रदूषित जल ही भारत की दो-तिहाई बीमारियों के लिए जिम्मेदार है और कभी-कभी तो जल-जन्य बीमारियां महामारी का रूप ले लेती हैं। नीचे दिए गये आंकड़े स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हैं। 1955-56 में दिल्ली में पीलिया के 40,000 रोगी प्रकाश में आए और मुंबई में 1978 में 2,000 रोगी, और जुलाई 1990 में पश्चिम बंगाल में लगभग 310 मौतें हुईं।

एक रिपोर्ट के अनुसार मुंबई शहर से ही लगभग 18 करोड़ लीटर अनुपचारित गंदा पानी (मलजल और उद्योगों का अपशिष्ट) रोजाना अरब सागर और थाने की खाड़ी में बहाया जाता है। सागर तट अब ठोस कचरा और औद्योगिक कचरा फेंकने के स्थान बन गये हैं। इसके फलस्वरूप मुंबई के अधिकतर सागर तट तैरने के लिए असुरक्षित और मनोरंजक गतिविधियों के लिए

अयोग्य हो गये हैं।

इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में कलकत्ता 'महलों और उद्यानों का शहर' जाना जाता था। परंतु शहर में जल और वायु प्रदूषण इस सीमा तक बढ़ गया है कि 1956 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे विश्व का 'सबसे गंदा शहर' नाम दिया। हालांकि कुछ वर्षों से हुगली नदी को साफ करने के लिए गंगा कार्य योजना लागू की जा रही है और 1991 की एक रिपोर्ट के अनुसार तब तक 65 परियोजनाएं पूरी हो चुकी थीं और लगभग 8.3 करोड़ लीटर गंदा जल प्रतिदिन उपचारित किया जा रहा था। श्री एम. विनायक[8] कलकत्ता में प्रदूषण की मात्रा के बारे में इस प्रकार लिखते हैं, "कलकत्ता में वायु, जल और शोर प्रदूषण की मात्रा बर्दाश्त करने की सीमा पार कर चुकी है। चूंकि कलकत्ता में श्वसन रोगों, जठरांत्र रोगों और मलेरिया की घटनाएं अभी से आम हो गयी हैं, इसलिए सन् 2000 तक इस महानगर में कुछ ही लोग ऐसे होंगे जो स्वस्थ जीवन जीने की कामना कर सकेंगे। औद्योगिक कचरे के कारण होने वाले जल प्रदूषण से जठरांत्र रोगों की घटनाएं काफी बढ़ गयी हैं। कलकत्ता की लगभग आधी आबादी झोंपड़पट्टियों में रहती है, और जल प्रदूषण के कारण इन बस्तियों में शिशुओं की मृत्यु-दर काफी बढ़ गयी है।

भारत की कुछ प्रमुख झीलों की हालत भी कोई अच्छी नहीं है। हुसैनसागर झील, जो हैदराबाद में पीने के पानी का मुख्य स्रोत है, आज अपनी राजसी सुंदरता खो चुकी है और चिकनाईयुक्त पानी का भंडार बन गयी है। इसमें मछलियां मर जाती हैं और मच्छर प्रजनन कर रहे हैं। कुछ साल पहले, बुद्ध की एक बड़ी प्रतिमा जब हुसैनसागर झील के पार ले जाई जा रही थी तो वह उसमें डूब गयी थी। डूबी हुई प्रतिमा को खोजने के लिए जो गोताखोर पानी में घुसे, उन्होंने बताया कि झील का पानी इतना अधिक हरा था कि वे अपनी हथेलियां तक नहीं देख पा रहे थे। इस झील में रोजाना लगभग 3 करोड़ लीटर गंदा पानी गिराया जाता है। इस पानी में हैदराबाद का मलजल तथा आसपास के क्षेत्रों के छोटे उद्योगों (लगभग 1500) का औद्योगिक कचरा होता है। इसके अतिरिक्त हर साल गणेश चतुर्थी उत्सव के दौरान प्लास्टर आफ पेरिस की बनी हुई गणेश की प्रतिमाओं को विसर्जित करने से समस्या और बढ़ जाती है। हालांकि हाल ही में आंध्रप्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड इस प्रकार मूर्ति विसर्जन पर प्रतिबंध लगाने के प्रति जागरूक हुआ है।

---

8. एम. विनायक "दी हिन्दू" में कालम लिखते हैं।

जम्मू और कश्मीर की डल झील खर-पतवार से भरी हुई है। पर्यटकों द्वारा पैदा की हुई यह एक ताजा घटना है जो अपने बचे हुए खाने को झील में फेंक देते हैं। इस फेंके गये खाने से पोषण पाकर इस झील में बहुत सारी खर-पतवार उग आई है जिससे झील की हालत बहुत ही खराब हो गयी है।

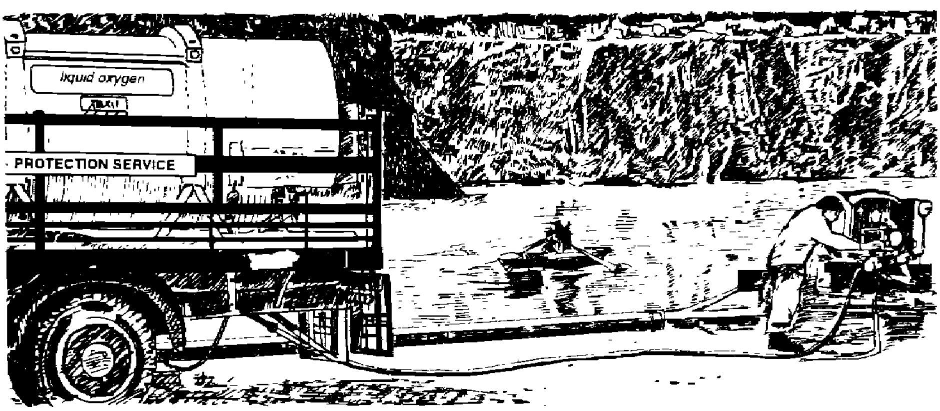
पूर्वी भारत में मणिपुर की लोकटक झील ही केवल दुनिया का तैरता हुआ अभ्यारण्य हैं। यह गंभीर संकट में है और जल्दी ही सूख सकती है। जंगलों के कटने तथा काफी अधिक भूक्षरण से इस झील में काफी गाद जमा हो गयी है। विशेषज्ञों का कहना है कि यदि झील से गाद न निकाली गयी तो यह शीघ्र ही खेल का मैदान बन जाएगी।

हिमाचल प्रदेश की एक दर्शनीय झील रेनुका में अनेक प्रकार की मछलियां, कछुए और घड़ियाल पाए जाते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार खनन कार्य के कारण अत्यधिक गाद जमा हो जाने से और बहुत अधिक हाथी घास उग जाने के कारण यह सूख (सिकुड़) रही है।

उड़ीसा की सुंदर चिलका झील वनस्पतियों से भर गयी है जिन्हें दूर करने के लिए युद्ध स्तर के प्रयासों की आवश्यकता है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण और रोकथाम

जल प्रदूषण में मुख्य योगदान औद्योगिक अपशिष्टों और मलजल का है। किसी बड़ी दुर्घटना से बचने के लिए तेजी से कार्यवाही का यही सही वक्त है। अपशिष्ट उपचार प्रणाली को उद्यागों के अंगीभूत हिस्से के रूप में अपनाना चाहिए। जिन



उद्यागों में संयंत्र लगे हुए हैं उन्हें इन संयंत्रों को न चलाने से होने वाली बचत की परवाह न करते हुए उन्हें नियमित रूप से चलाना चाहिए। इसके साथ-साथ नीचे दिए गये कुछ उपाय भी अपनाए जा सकते हैं :

आधुनिकीकरण प्रक्रिया : उस तरह की नयी तकनीकों को अपनाना काफी लाभदायक होगा जिनमें पानी की जरूरत न हो। वर्तमान समय में प्रचलित कुछ गीली प्रक्रियाओं के स्थान पर शुष्क प्रक्रियाओं को अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए पहले धातुमार्जन का जो कार्य अम्लों की सहायता से किया जाता था, वह अब रेत विस्फोटन से किया जाता है जिसमें कोई तरल अपशिष्ट नहीं उत्पन्न होता है।

प्रक्षालन जल का पुनः उपयोग : अपशिष्ट की मात्रा कम करने के लिए उद्योगों से निकले हुए कम प्रदूषित बेकार पानी को प्रक्षालन (धुलाई) में इस्तेमाल करना चाहिए। उदाहरण के लिए वस्त्रोद्योग में अंतिम धुलाई के बाद निकले हुए बहुत कम क्षारयुक्त पानी का उपयोग धागों की पहली और दूसरी धुलाई में किया जा सकता है जब क्षार की मात्रा अधिक होती है।

सांद्रित व्यर्थ पदार्थ को अलग करना : अक्सर सांद्रित कचरे को जिनका आयतन कम होता है, उपचार के लिए अथवा निपटान के लिए तनुकृत कचरे में मिला दिया जाता है। सांद्रित अपशिष्ट जल को तनुकृत अपशिष्ट जल से अलग किया जा सकता है ताकि प्रदूषण को काफी सीमा तक कम किया जा सके और तनुकृत अपशिष्ट जल को थोड़े से उपचार के बाद या तो सिंचाई में इस्तेमाल किया जा सके अथवा नदियों या पानी के अन्य स्रोतों में गिराया जा सके। चमड़ा शोधन उद्योगों से निकले अपशिष्ट जल का इस विधि से उपचार किया जा सकता है।

अपशिष्ट उपचार के सांझा संयंत्र लगाना : छोटे उद्योग उपचार संयंत्रों का खर्चा नहीं उठा सकते, इसलिए उनके अपशिष्ट अक्सर कृषि भूमि पर अथवा सड़कों के दोनों किनारों पर भरे हुए देखे जा सकते हैं जहां वे इन्हें प्रवाहित कर देते हैं। जहां कहीं कई उद्योग एक साथ लगे हुए हों वहां अपशिष्ट उपचार के लिए सांझा संयंत्र लगाकर अपशिष्टों को इस तरह गलत ढंग से फेंकने से बचा जा सकता है। तमिलनाडु में अम्बूर, वणियाम्बडी और रानीपेट में जहां बहुत सारे चमड़ा शोधन उद्योग हैं, ऐसे सांझा उपचार संयंत्र लगाए जा रहे हैं।

बायो-गैस उत्पादन : आज जिसे हम कचरा समझते हैं उसे जल्दी ही सम्पत्ति में बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए हमारे देश में शराब उद्योग बायो-गैस संयंत्र लगा रहे हैं जिनमें अपशिष्टों का प्रयोग होता है। इससे ईंधन पर होने वाले खर्च में तो काफी बचत होती ही है साथ ही अपशिष्टों की गंदगी भी कम होती है।

अपशिष्ट पंक से उपयोगी पदार्थ बनाना : अपशिष्ट उपचार के पश्चात् जो कीचड़ बचता है वह भी एक समस्या है। लुगदी तथा कागज उद्योग के पंक का उपयोग बोर्ड बनाने में किया जा सकता है जो पैकिंग में अथवा लकड़ी के कृत्रिम पैनेल बनाने के काम आता है। विद्युत लेपन उद्योग से प्राप्त अपशिष्ट पंक का उपयोग जल रोधक यौगिकों को बनाने में किया जा सकता है।

व्यर्थ पानी को साफ करके पुनः उपयोग में लाना : वर्तमान समय में अधिकांश उद्योगों में कचरे से रसायनों और धातुओं को पुनः प्राप्त कर लिया जाता है। साफ किए गये पानी का बायलर में ठंडा करने की प्रक्रिया में और यदि संभव हो तो उद्योग की मुख्य प्रकिया में पुनः उपयोग किया जा सकता है। इससे नए सिरे से साफ पानी की आवश्यकता में कमी आएगी। लुगदी तथा कागज के कारखानों, चीनी उद्योग तथा शराब के कारखानों से काफी मात्रा में अपशिष्ट पानी निकलता है। इसे उचित उपचार के बाद सिंचाई के लिए अथवा उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे न तो जमीन खराब होगी और न ही भूमिगत जल प्रदूषित होगा।

मलजल तथा गंदा पानी : राज्य सरकारों को मलजल के निकास तथा उसके उपचार के लिए उपचार संयंत्र लगाने को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। हमारे देश के 3119 कस्बों और शहरों में से केवल 8 में ही सारे मलजल के उपचार की पूर्ण सुविधा मौजूद है। 209 शहरों और कस्बों में इस तरह की आंशिक सुविधा है। बाकी बचे शहरों और कस्बों ऐसी कोई सुविधा है ही नहीं जिससे जल-जन्य रोगों और महामारियों में वृद्धि हो रही है।

केवल मलजल का उपचार ही प्रदूषण को रोकने का उपाय नहीं है। प्रत्येक नागरिक को यह महसूस करना होगा कि प्रदूषण उसके घर से प्रारंभ होता है। सब्जियों, कागज, बेकार भोजन, प्लास्टिक तथा ऐसी अन्य वस्तुओं को खुले नालों में नहीं फेंकना चाहिए, बल्कि उन्हें कागज के थैलों में रखकर स्थानीय निकायों

द्वारा कूड़ा फेंकने के लिए गलियों में रखे गये कूड़ादानों में फेंकना चाहिए। जीवन का अमृत पानी एक बेशकीमती पदार्थ है और इसे बेकार नहीं करना चाहिए। पानी के बिना पृथ्वी पर जीवन हो ही नहीं सकता। हमें अपनी नदियों और झीलों की प्रदूषण से अवश्य रक्षा करनी चाहिए और अपने जलस्रातों को स्वच्छ तथा प्रदूषणमुक्त रखने के लिए कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार रहना चाहिए।



6

तेल की परत–एक नये आयाम का विस्फोट

अनेक वर्षों तक उद्योगों और स्वचालित वाहनों में ईंधन के लिए केवल कोयले का इस्तेमाल होता था। तेल की खोज के बाद सभी क्षेत्रों में तेल ही प्रमुख ईंधन बन गया। दुर्भाग्यवश यह ईंधन विश्व के सभी हिस्सों में उपलब्ध नहीं है। अधिकांश देश तेल उत्पादक देशों से तेल का आयात करते हैं, इसलिए प्रतिदिन लाखों टन तेल एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जाता है। चूंकि सड़क मार्ग से अथवा वायु मार्ग से तेल की ढुलाई संभव नहीं है इसलिए तेल की ढुलाई जल मार्ग से पानी के जहाजों से होती है। आजकल 130 करोड़ टन तेल की ढुलाई होती है। इसमें से अधिकांश तेल खाड़ी के देशों से आता है। विश्वभर की तेल की आवश्यकता पूरी करने के लिए जलयान जलमार्गों से होकर तेल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। इन जलपोतों के मुख्य मार्ग अरब सागर से होकर गुजरते हैं।

खाड़ी के देशों (अधिकतर) से तेल लेकर विश्व के विभिन्न हिस्सों को जाने वाले पोत दुर्घटनाग्रस्त भी हो जाते हैं। इन दुर्घटनाओं के फलस्वरूप पोतों में भरा तेल सागर की सतह पर कई किलोमीटर दूर तक फैल जाता है। सागरों में होने वाली ये दुर्घटनाएं जलपोत के तल से लग जाने, आपस में टकरा जाने, आग अथवा विस्फोट के कारण होती हैं, जिनके फलस्वरूप जलपोतों से तेल बह जाता है। सागर के तटीय क्षेत्रों और सागर के किनारों पर तेल की मोटी-मोटी परतें आमतौर पर देखी जा सकती हैं।

इस प्रकार की पहली दुर्घटना 1967 में घटी थी। लाइबेरिया का तेल पोत ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिण-पूर्वी तट पर सतह से टकरा गया था। इससे लगभग 60,000 गैलन कच्चा तेल बहकर सागर में फैल गया। इस तेल की बनी मोटी परतों के कारण बहुत सी मछलियां और जल पक्षी मर गये। इस दुर्घटना ने विश्व

को सागर में रिसने वाले तेल के खतरों के प्रति जगा दिया।

1969 में सागर जल में स्थित एक तेल कुएं के फट जाने से हुई क्षति के कारण सांता बारबरा, कैलीफोर्निया लोगों के आकर्षण का केंद्रबिंदु बना। इस दुर्घटना से न केवल सागर का किनारा प्रभावित हुआ था बल्कि फैले हुए तेल में फंसकर कुछ पक्षियों तथा अन्य जंतुओं की मृत्यु भी हुई। तेल के इस फैलाव के तुरंत बाद यह माना गया कि सागर का वह हिस्सा एक 'पारिस्थितिक मरूभूमि' बन गया था, परंतु हाल में किए गये अनुसंधानों से पता चला है कि क्षति अधिक गंभीर नहीं है।

1978 में अलास्का के समुद्र तट पर एक बड़ा तेल टैंकर (तेल पोत) एक समुद्री चट्टान से टकरा गया। इससे एक करोड़ दस लाख गैलन तेल निकलकर समुद्र में फैल गया। जब तेल की यह परत फैलकर सागर तट तक पहुंच गयी तब इसमें फंसकर लगभग एक लाख पक्षी मर गये। सीलों तथा सूंस (देखने में डालफिन की तरह लगने वाला एक स्तनपायी जीव) पर तेल की विषाक्तता का असर हुआ और वे सागर की तलहटी में बैठ गयीं।

तेल टैंकरों की दुर्घटनाएं भारत में भी कम नहीं होती हैं। 1974 में ट्रांशरान नाम का एक अमरीकी टैंकर किल्टन द्वीप (लक्षद्वीप) में तलहटी से टकरा गया था। इससे उसमें भरा हुआ जलसेना के लिए लाया गया 5000 टन विशिष्ट ईंधन समुद्र की सतह पर फैल गया। 1976 में एक ग्रीक टैंकर वेरावल के पास से गायब हो गया। इस टैंकर का कोई मलबा तो नहीं मिला पर भारत के पश्चिमी सागर तट के नजदीक ही, समुद्र जल की सतह पर तैरती हुई तेल की परतें दूर-दूर तक देखी गयीं।

कभी-कभी जानबूझकर तेल छोड़ने से सागर की सतह पर तेल फैल जाता है (जैसा कि 1991 के खाड़ी युद्ध के दौरान हुआ था)। तेल की यह परत 100 किलोमीटर लंबे और 15 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में फैल गयी थी और कहीं-कहीं पर तो इसकी मोटाई आधा मीटर तक थी। ऐसा 'पर्यावरणविज्ञानी आतंकवाद' भविष्य में क्षेत्र की पारिस्थितिकी को बदल सकता है। पर्यावरण को हथियार के रूप में इस्तेमाल करके शत्रु को धमकाना कोई नयी बात नहीं है। ऐसा प्राचीन समय में भी किया गया था। इतिहास इस बात का गवाह है कि जीते गये शहरों में लाशों को खुले में छोड़ दिया जाता था ताकि उनसे बीमारियां फैलें। कुओं में जहर डाल दिया जाता था। जंगलों, फसलों और घरों को आग लगा दी जाती थी। यह सब पर्यावरण को अधिक से अधिक क्षति पहुंचाने के लिए किया जाता था। खाड़ी युद्ध में सागर में काफी मात्रा में तेल बहाकर यही नीति अपनाई गयी

थी। ऐसा करते हुए पूरी पृथ्वी पर होने वाले नुकसान पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया था। लाखों समुद्री पक्षियों को इस तेल परत से खतरा उत्पन्न हो गया था। अपने शरीर पर घातक तेल लपेटे हुए ये पक्षी मछलियां पकड़ने के लिए पानी में गोता नहीं लगा पाते थे और भूख से तड़प-तड़प कर मर गये थे। खाड़ी में प्रजनन करने वाली ब्लू व्हेल (जो अब समाप्त होने के कगार पर पहुंच गयी है) भूख से छटपटा रही थीं क्योंकि सागर में फैले तेल से इनका आहार-क्रिल (छोटे छोटे पादप क्रस्टेशियन) समाप्त हो गये थे। मूंगों की अधिकांश समुद्री चट्टानों (जिन पर काफी अधिक मात्रा में समुद्री घास और समुद्री खर-पतवार उगते हैं जो बहुत से समुद्री जीवों का आहार बनते हैं) को भी अपूर्णनीय क्षति हुई थी।

पोत से तट पर अथवा जलपोत से जलपोत में तेल डालते समय भी तेल बह सकता है। जलपोतों के अथवा तेल टर्मिनल के वाल्वों के ठीक से काम न करने से भी तेल बह सकता है।

आमतौर पर बहा हुआ तेल तेजी से एक गोलाई में फैल जाता है, परंतु यदि रिसाव अधिक हो तो यह साफ पानी से एक दूसरे से बंटे हुए बड़े 'द्वीपों' के रूप में बहता है। कई-कई किलोमीटर लंबे सागर तट पर तैरती हुई तेल की परत समुद्र में प्रकाश संश्लेषण क्रिया को प्रभावित करती है। चूंकि तेल आसानी से जैव अपघटनशील नहीं है और लंबे समय तक जैसा का तैसा बना रहता है (हालांकि हल्के तेल का काफी हिस्सा वाष्प बनकर उड़ जाता है), इसलिए कुछ समय के पश्चात् उससे तारकोल के गोले बन जाते हैं। एक अन्य प्राकृतिक प्रक्रिया से तेल का पायसीकरण होने से उसकी छोटी-छोटी बूंदें बन जाती हैं। ये बूंदें तलहटी में बैठ जाती हैं और बालू के साथ मिलकर तारकोल के गोले बनाती हैं। तारकोल के ऐसे गोलों से समुद्री जल जीवों और समुद्री पक्षियों को काफी खतरा उत्पन्न हो जाता है।

चूंकि तेल प्रदूषण की समस्या से सभी राष्ट्र प्रभावित होते हैं इसलिए विशेषज्ञ निश्चित समयांतराल पर सर्वेक्षण करते रहते हैं। एक आकलन के अनुसार किसी भी समय अरब सागर की सतह पर तैरने वाले तारकोल की मात्रा लगभग 3700 टन हो सकती है। बंगाल की खाड़ी के दक्षिण के जल मार्ग में तारकोल के गोलों की यह मात्रा किसी भी समय कम से कम 1100 टन होती है। समुद्र में तेल की परत के लगातार संपर्क में रहने के कारण हिन्द महासागर क्षेत्र में अधिकांश मूंगे की चट्टानें—लक्षद्वीप में (कावारत्ती चट्टान), अंडमान एवं निकोबार द्वीप में, तथा मालागासी के दक्षिण-पश्चिमी भाग में— कमोबेश गायब

हो गयी हैं। विश्व के विभिन्न भागों में अधिकांश मूंगे की चट्टानों को संकटग्रस्त पारिस्थितिक तंत्र घोषित किया गया है।

तेल की परतों से होने वाले नुकसान से बचने के लिए कुछ निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं :

- तेल की परत को जला दिया जाए।
- एक चूषण-युक्ति द्वारा सतह के ऊपर से तेल को निकाल लिया जाए। इस कार्य में लगे जलयानों को स्किमर कहते हैं।
- फैले हुए तेल पर लकड़ी के बुरादे जैसे अवशोषक पदार्थ फैला दिए जाएं और कुछ समय के पश्चात् तेल के साथ इन पदार्थों को निकाल लिया जाए।
- कभी-कभी तेल की सतह पर तेल खाने वाले सूक्ष्म जीव डाल दिए जाते हैं। कुछ समय में ये सूक्ष्म जीव तेल को अपघटित कर देते हैं।
- इस तेल को सागर में डुबो देना एक अन्य उपाय है। इस कार्य के लिए अधिक घनत्व वाले किसी ठोस पदार्थ के बारीक कण अथवा उसका चूर्ण तेल की सतह पर इस प्रकार फैलाया जाता है कि यह तेल से अच्छी तरह मिल जाए और उसे अपने साथ गहराई में डुबो ले जाए।
- वर्तमान समय में उपलब्ध सबसे उपयुक्त उपाय है पायसी कारक अथवा विक्षेपी पदार्थ के साथ तेल का विक्षेपण और पायसीकरण।

7

ठोस कचरा–मुसीबतों का ढेर

क्या आपने मानव निर्मित पहाड़ों के बारे में सुना है ? क्या इस तरह के पहाड़ बनाना संभव है ? इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रत्येक शहरी क्षेत्र की प्रत्येक गली में छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं। यदि इन पहाड़ियों का एक स्थान पर ढेर लगा दिया जाए तो पहाड़ बन जाएंगे। हमारा उपभोक्ता समाज प्रतिदिन काफी अधिक मात्रा में ठोस कचरा घरों से बाहर फेंकता है। एक आकलन के अनुसार विश्व भर में प्रतिवर्ष लगभग 10 अरब टन ठोस कचरा निकलता है, और यदि इतने सारे कचरे का एक जगह पर ढेर लगा दिया जाये तो एवरेस्ट पर्वत जितनी ऊंचाई का पहाड़ बन जाएगा। विश्व के सबसे बड़े उपभोक्ता राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका में ठोस कचरे की समस्या सबसे गंभीर है। अमेरिका में घरों से निकलने वाले कचरे, व्यापारिक कचरे, औद्योगिक कचरे और निर्माण उद्योग के मलबे को मिलाकर प्रतिदिन 7 लाख मीट्रिक टन से अधिक ठोस कचरा निकलता है।

यह ठोस कचरा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि यह कचरा हमारी बेशकीमती जमीन को निगलता जा रहा है और आसपास के सौंदर्य को नष्ट कर रहा है। हमारी रोजमर्रा की सामान्य गतिविधियों से उत्पन्न कोई भी अनचाहा अथवा त्यागा गया पदार्थ यदि ठोस रूप में ही फेंक दिया जाए तो वह ठोस कचरा कहलाता है। इसमें कूड़ा-कचरा (रसोई का कचरा और व्यर्थ भोजन), कागज, फटा पुराना कपड़ा, कांच की बोतलें, धातुओं के डिब्बे, प्लास्टिक, फाइबर, घरों के ईंधन से निकला अपशिष्ट, गलियों में झाड़ू लगाने से निकला कूड़ा, इमारतों का मलबा, रोड़ी और पत्थरों के टुकड़े तथा फेंके गये वाहन शामिल हैं। एक अनुमान है कि भारत में प्रतिदिन शहरों में प्रति व्यक्ति 0.34 किलोग्राम तथा गांवों में प्रति व्यक्ति 0.15



किलोग्राम ठोस कचरा निकलता है। भारत के बड़े शहरों में कितना ठोस कचरा निकलता है, इसे निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है :

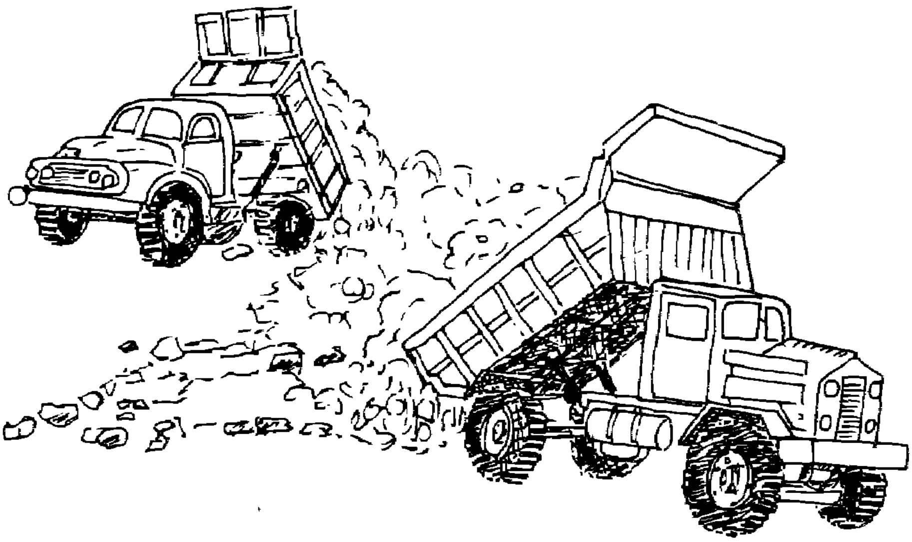
सारणी-3
भारत में निकलने वाले ठोस कचरे की मात्रा

शहर	*ठोस कचरा प्रतिदिन (टन)*	*ठोस कचरा प्रतिवर्ष (टन)*
नयी दिल्ली	2,400	8,76,000
मुंबई	4,000	14,60,000
चेन्नई	2,500	9,12,500
बंगलौर	2,000	7,30,500
अहमदाबाद	1,600	5,84,000

उद्योगों से निकला ठोस कचरा समस्या को और बढ़ा देता है। इस तरह का कचरा कोयला तथा खनिज उद्योगों, खनन उद्योगों, धातु उद्योगों, इंजीनियरिंग उद्योगों और ताप बिजलीघरों से पैदा होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार उद्योगों में लगभग 50 प्रतिशत कच्चा माल अन्ततः कूड़ा-कचरा बन जाता है और इनमें से 15 प्रतिशत विषाक्त अथवा हानिकारक होता है। धातु निष्कर्षण उद्यागों, विशेष रूप से लौह और स्टील संयंत्रों से लाखों टन धातुमल का निपटान किया जाता है। काफी अधिक मात्रा में ठोस कचरा औद्योगिक अपशिष्टों को उपचारित करने वाले संयंत्रों से निकले कीचड़ (पंक) से उत्पन्न होता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण ठोस कचरा जिस पर ध्यान देने की जरूरत है वह है जैवचिकित्सीय व्यर्थ पदार्थ। इस कचरे में व्यर्थ शारीरिक अंग/ अवयव, टीके के सिरिंज, पट्टियां, अवशोषक, कांच आदि शामिल हैं। अस्पतालों और क्लिनिकों द्वारा काफी अधिक मात्रा में फेंका गया जैवचिकित्सीय कचरा गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देता है। कुछ स्थानों पर या तो क्लिनिकों के सामने अथवा गलियों के नुक्कड़ों पर इस प्रकार के जैवचिकित्सीय कचरे को सड़ते हुए देखना आम बात है। कूड़ा बीनने वाले (अधिकांश बच्चे) इस कचरे को अपने हाथों से उठाते हैं जिससे उन्हें यकृतशोथ विषाणुओं (पीलिया पैदा करने वाले विषाणुओं) तथा अन्य विषाणुओं के संक्रमण का खतरा होता है। आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में ऐसे कचरे को बाहर न फेंकने तथा उन्हें विशेष रूप से तैयार किए गये पात्रों में सुरक्षित ले जाने और अंत में जला देने के लिए अध्यादेश लागू किए गये हैं।

ठोस कचरा इतना गंभीर चिंता का विषय क्यों है ? जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ठोस कचरा फेंकने से शहरों और कस्बों की सुंदरता समाप्त होती है, और इनसे स्वास्थ्य समस्याएं जन्म लेती हैं। कूड़े के ढेर रोग फैलाने वाले जीवों जैसे मक्खियों, मच्छरों, चूहों और काकरोचों के प्रजनन स्थल बन जाते हैं। रिपोर्टों से पता चलता है कि कूड़े के एक घन मीटर ढेर से 8,00,000 मक्खियां पैदा हो सकती हैं। रोग पैदा करने वाले जीवों की वाहक ये मक्खियां पेचिश, दस्त, आदि जैसे रोगों को जन्म देती हैं। कीटों तथा अन्य जीवों के वाहक चूहे प्लेग जैसी बीमारी को जन्म देते हैं जैसा कि अभी हाल ही में 1994 में सूरत में देखने में आया था। ऐसा बताया जाता है कि ठोस कचरे से मनुष्य को लगभग 25 प्रकार की बीमारियां होती हैं। कूड़े-कचरे के ढेर से आग लगने और दुर्घटनाओं का भी खतरा होता है।



ठोस कचरे का जमा होते जाना एक लगातार बढ़ती जा रही समस्या है जिसका कोई आसान हल दिखाई नहीं देता है। दूसरे प्रकार के प्रदूषकों से भिन्न इस मामले में निरोधक उपाय नहीं अपनाए जा सकते हैं। निपटान की समस्या के लिए अनेक हल सुझाए गये हैं। ठोस कचरे के प्रबंधन का वर्तमान तरीका है—शहर के विभिन्न हिस्से से कूड़ा-कचरा इकट्ठा करना और उसे शहर से दूर ढोकर ले जाना जहां इसे या तो जला दिया जाता है अथवा उसकी कम्पोस्ट खाद बनायी जाती है अथवा ऐसे ही एक स्थान पर डाल दिया जाता है। सबसे आसान

हल है इस कचरे को पुनः उपयोग में लाना। इससे कचरे के निपटान की समस्या भी हल हो जाती है और इससे कुछ धन प्राप्ति भी होती है। साथ ही, इससे कूड़े को इकट्ठा करने और उसकी ढुलाई पर आने वाल खर्च की भरपाई भी हो जाती है।

नये उत्पादों के निर्माण में कचरे का कच्चे माल के रूप में उपयोग पुनः उपयोग कहलाता है। इस प्रकार के पुनः उपयोग से वालबोर्ड, कार्बनिक खाद और सेलूलोस प्लास्टिक जैसे उत्पाद तैयार किए जाते हैं। पुरानी चीजों से नयी चीजें बनाना भी एक प्रकार का पुनःउपयोग है। इसके 2 स्पष्ट लाभ हैं : 1. वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण—उदाहरण के लिए कचरे से एक टन कागज के निर्माण से 17 पेड़ कटने से बच जाते हैं जो कागज निर्माण के काम आते हैं। 2. निपटान किए जाने वाले कचरे की मात्रा में काफी कमी।

धातुओं के कचरे, धातुओं की छीजन, फेंके गये धातु के बर्तन और टूटे-फूटे बेकार मोटर वाहनों का कई प्रकार से उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के प्लास्टिक पदार्थों को गलाकर उनसे कई प्रकार की उपयोगी वस्तुएं तैयार की जाती हैं। कार्बनिक पदार्थों को वायुवीय परिस्थितियों में सड़ाने-गलाने का जैविक तरीका है। इससे बहुत अच्छी किस्म की कम्पोस्ट खाद तैयार होती है।

गोबर का अब बायो-गैस बनाने में उपयोग किया जाता है। उपयोग के पश्चात् बचे गोबर के गारे का खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

गन्ने की चीनी बनाने के दौरान निकली खोई बेकार पदार्थ होती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यह उपयोगी खाद होती है क्योंकि यह नमी को बनाए रखती है और पौधों के लिए पोषक तत्व बहुत धीरे-धीरे छोड़ती है।

कूड़े-कचरे के ढेर में मौजूद सेलूलोस से ग्लूकोज और उससे अल्कोहल प्राप्त करने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। कूड़े-कचरे से अन्य जिन पदार्थों के प्राप्त होने की संभावनाएं हैं, वे हैं एसीटोन, ग्लिसराल और कार्बनिक अम्ल।

ताप बिजलीघरों से बहुत अधिक मात्रा में उड़ने वाली राख पैदा होती है और इसका निपटान एक विश्वव्यापी समस्या है। उड़ने वाली राख ताप बिजलीघरों में कोयले को जलाने से उत्पन्न होने वाली बहुत बारीक राख होती है। यह कुल उत्पादित राख का लगभग 80-85 प्रतिशत भाग होती है। भारत में 66 ताप बिजलीघर हैं जिनसे प्रति वर्ष लगभग 3-4 करोड़ टन (लगभग एक लाख टन प्रतिदिन) उड़ने वाली राख पैदा होती है। इसे या तो बोरियों में भरकर सूखा ही फेंक दिया जाता है अथवा इसका गारा बना दिया जाता है (वायु प्रदूषण

को रोकने के लिए) और इस गारे को राख के तालाब में डाल दिया जाता है जहां से इसे नजदीकी नदी में बहा दिया जाता है। नवीनतम आंकड़ों से पता चलता है कि यदि उड़ने वाली राख को वर्षों तक लगातार यूं ही फेंका जाता रहा तो इस शताब्दी के अंत तक इसके लिए 283 वर्ग किलोमीटर धरती की जरूरत पड़ेगी और इससे गंभीर पारिस्थितिकीय समस्या पैदा हो जाएगी।

उड़ने वाली राख के लाभदायक उपयोग तलाशने के लिए विश्व भर में अनुसंधान चल रहे हैं ताकि इसके निपटान के लिए आवश्यक काफी अधिक पानी और जमीन की समस्या से छुटकारा पाया जा सके।

कचरे से ऊर्जा प्राप्त करना

विश्व स्तर पर संयुक्त राज्य अमेरिका कूड़े-कचरे से बिजली तैयार करने वाले 130 संयंत्र (इनमें से सबसे बड़े संयंत्र में प्रति सप्ताह लगभग 12,000 टन कचरे के संसाधन से 68 मेगावाट बिजली प्राप्त होती है) लगाकर इस क्षेत्र में सबसे अग्रणी राष्ट्र बन गया है। भारत में प्रतिदिन लगभग 3 लाख टन कूड़ा-कचरा पैदा होता है। परंतु हम इससे बिजली नहीं बना पा रहे हैं। हालांकि मुंबई में जलाने की गुटिकाएं बनाने का एक संयंत्र लगाया गया है जहां कूड़े को जलाने से पहले उसे संसाधित किया जाता है। आशा की जाती है कि इस संयंत्र में प्रतिदिन 150 टन कूड़े-कचरे से जलाने वाली लगभग 80 टन गुटिकाएं तैयार होंगी। इन गुटिकाओं का उद्योगों में तथा घरों में भी ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। यदि यह संयंत्र सफल हुआ तो अन्य स्थानों पर भी कूड़े से ऊर्जा उत्पन्न करने वाले संयंत्र लगाए जाएंगे।

भारत में और सभी विधियों में कूड़े-कचरे से जमीन के निचले हिस्सों की भराई को ठोस कचरे के निपटान की सबसे सस्ती और सबसे प्रभावशाली विधि माना जाता है। यह शहर के आसपास के निचले हिस्सों की भराई के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। इस विधि से पहले कचरे को एक गड्ढे में भर दिया जाता है और फिर उसके ऊपर मिट्टी की तहें लगा दी जाती हैं। इस तरह से समतल की गयी जमीन का पार्क, खेल के मैदान के रूप में तथा अन्य हलके कामों के लिए सुविधापूर्वक इस्तेमाल किया जा सकता है। इस विधि का प्रयोग उन क्षेत्रों में नहीं करना चाहिए जहां भूमिजल का स्तर ऊंचा हो क्योंकि इस कचरे से भूमिगत जल संदूषित हो सकता है। धातु निष्कर्षण उद्योगों से निकले कचरे धातुमल का उपयोग खदानों तथा खुली खदानों को पाटने में किया जा सकता

है और इस तरह जमीन को पुनः समतल बनाया जा सकता है।

जलाकर राख कर देना तथा ताप अपघटन कुछ अन्य विधियां हैं जिनका कुछ स्थानों में प्रयोग किया जाता है। जलाकर राख कर देने का अर्थ है कचरे को जलाकर इस प्रकार के अंश में बदल देना जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न हो। आक्सीजन की अनुपस्थिति में जलाने को ताप अपघटन कहते हैं। फिर भी इन विधियों का बहुत अधिक उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि इन विधियों से निकली राख भी एक मुसीबत होती है और उसका निपटान फिर एक समस्या बन जाती है। शहर को साफ-सुथरा रखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है और ऊपर सुझाए गये उपाय इस लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोगी हो सकते हैं।



8

विकिरण–कभी न समाप्त होने वाली यंत्रणा

विकिरण क्या है ? कुछ पदार्थ (तत्व और उनके कण) स्वयं को अपघटित करने और विकिरण के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित करने में सक्षम होते हैं। यह विकिरण हम अपनी आंखों से नहीं देख पाते हैं, परंतु यह हमारे शरीर में प्रवेश करके हमें अत्यधिक नुकसान पहुंचा सकता है।

6 अगस्त 1945 को जापान में हिरोशिमा पर पहला परमाणु बम गिराया गया था। यह बताया गया है कि जैसे ही बम गिरा, लोग चिल्लाते हुए और पानी के लिए धक्का-मुक्की करते हुए घरों से बाहर भागे। उनकी चमड़ी शरीर से उतरने लगी और लगभग 70,000 लोग तुरंत मर गए। साल के अंत तक मरने वालों की संख्या 1,40,000 तक पहुंच गयी। जो व्यक्ति जीवित बचे उन्हें बाद में वर्षों तक फेफड़े के कैंसर, स्तन कैंसर, विकिरण मोतियाबिंद जैसे रोगों तथा प्लाज्मा कोशिकाओं की बीमारियों का सामना करना पड़ा। प्लाज्मा कोशिका रोग में ये कोशिकाएं अस्थिमज्जा पर आक्रमण करती हैं और उसका कार्य करना रोक देती हैं।

नाभिकीय विस्फोट परीक्षणों के दौरान उत्सर्जित रेडियोसक्रिय पदार्थ न केवल परीक्षण स्थल को ही प्रभावित करते हैं बल्कि वे दूर-दूर तक के क्षेत्रों को भी प्रभावित करते हैं। उन क्षेत्रों के जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों को भी नुकसान पहुंचाते हैं।

मनुष्य प्राकृतिक स्रोतों से निकलने वाले विकिरणों जैसे कि बाहरी अंतरिक्ष से आने वाले ब्रह्मांडीय विकिरण और सूर्य के विकिरण से लगातार प्रभावित होता रहा है। कुछ किस्म की चट्टानें और मिट्टी तथा रेडियोसक्रिय गैसों से भी विकिरण निकलता है। परंतु बीते दिनों में विकिरण का स्तर सहनसीमा के भीतर था। यह तो केवल नाभिकीय शस्त्रों के आविष्कार और परमाणु बिजलीघरों की स्थापना

के बाद विकिरण हानिकारक सीमा तक बढ़ गया है। यद्यपि शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए नाभिकीय ऊर्जा के इस्तेमाल से मनुष्य को अत्यधिक लाभ हुआ है, परंतु फिर भी इस विकिरण में निहित खतरे से कोई इंकार नहीं कर सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि परमाणु बिजलीघर बिजली के उत्पादन में सहायता करते हैं। वर्तमान समय में विश्व में 17 प्रतिशत बिजली केवल नाभिकीय स्रोतों से ही तैयार की जाती है। जापान में 38 परमाणु बिजलीघर काम कर रहे हैं, रूस में 56 और संयुक्त राज्य अमेरिका में 110 परमाणु बिजलीघर हैं। कुल मिलाकर 26 देशों मं 434 बिजलीघर इकाइयां है जिनकी उत्पादन क्षमता 316,000 मेगावाट है। इसके अतिरिक्त लगभग 100 इकाइयां निर्माणाधीन हैं जिनकी क्षमता 80,000 मेगावाट होगी। भारत में भी परमाणु बिजलीघर हैं, परंतु उतने बड़े पैमाने पर नहीं जितने कि पश्चिमी देशों में।

जो भी हो, इस समय विद्यमान परमाणु संयंत्रों तथा नए संयंत्र लगाने पर विश्वव्यापी विवाद चल रहा है। यह विवाद अप्रैल 1986 में रूस के चेर्नोबिल परमाणु संयंत्र की दुर्घटना के पश्चात और तेज हो गया है। इस दुर्घटना ने परमाणुवीय विकिरणों से पर्यावरण को होने वाली क्षति को उजागर कर दिया था। संयंत्र में लगी एक आग से वातावरण में अत्यधिक मात्रा में विकिरण उत्सर्जित हो गया। रेडियोसक्रिय धुएं के ये बादल पूर्वी यूरोप में स्कैंडीनेविया की ओर चले गए जिससे वहां की फसलों तथा पालतू पशुओं को काफी क्षति हुई। मनुष्य पर उसके परिणामों के बारे में अभी भी कोई जानकारी नहीं है।

यह घटना फिर भी कोयला तथा तेल जैसे पारंपरिक ईंधनों का उपयोग करने वाले बिजलीघरों की तुलना में परमाणु बिजलीघरों के लाभों को कम नहीं कर देती है। ऊर्जा के अन्य स्रोत से तुलना करने पर पता चलता है कि परमाणुवीय स्रोत साफ हैं, सघन हैं और कम ईंधन से अधिक उर्जा उत्पन्न करते हैं। परमाणु बिजलीघर सल्फर डाईआक्साइड नहीं पैदा करते (अम्लीय वर्षा का कारण), कार्बन डाईआक्साइड (ग्रीन हाउस प्रभाव के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार) उत्पन्न नहीं करते, नाइट्रोजन के आक्साइड अथवा भारी धातु प्रदूषक उत्पन्न नहीं करते। इन पर लागत भी कम आती है क्योंकि इन्हें स्थापित करने के लिए जमीन के छोटे से टुकड़े की जरूरत पड़ती है और इनसे बहुत अधिक मात्रा में बिजली उत्पन्न होती है (एक किलोग्राम यूरेनियम से 25,000 किलोग्राम कोयले के बराबर बिजली प्राप्त होती है)। और यह बिजली यूरेनियम के केवल एक प्रतिशत उपयोग से प्राप्त होती है। यदि यह उपयोग बढ़ाकर 70 प्रतिशत कर दिया जाये तो एक किलोग्राम यूरेनियम से 2,000,000 किलोग्राम कोयले

जितनी बिजली प्राप्त होगी। चूंकि जल और कोयले के स्रोतों का भौगोलिक रूप से समान वितरण नहीं हुआ है, इसलिए परमाणुवीय स्रोतों से इस समस्या को दूर करने में सहायता मिलती है। परमाणु बिजलीघर जल और कोयले के स्रोतों से काफी दूर के स्थानों में लगाए जा सकते हैं। परमाणु बिजलीघरों से उत्पन्न कचरे से न तो कोई दुर्गंध आती है, और न ही उससे हानिकारक गैसें निकलती हैं।

इन लाभों के बावजूद परमाणु बिजलीघर से निकले कचरे को खतरनाक माना जाता है। इसके दुष्परिणाम परमाणु बिजलीघरों के लाभों पर भारी पड़ते हैं। इस समस्या का कारण यह है कि परमाणु कचरा लाखों वर्षों के बाद जाकर हानिरहित बनता है। बिजली बनने के दौरान उत्पन्न प्लूटोनियम (200 किलोग्राम प्रतिवर्ष प्रति रिएक्टर) सभी मनुष्यों में कैंसर उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। असामान्य बच्चों का जन्म, उत्परिवर्तन, बांझपन, त्वचा में तेज जलन और शरीर के रोगों का सामना करने की क्षमता कम हो जाना इसके अन्य गंभीर प्रभाव हैं। विकिरणों के लगातार संपर्क में रहने से आनुवंशिक दोष पैदा हो जाते हैं जिससे आने वाली पीढियां भी प्रभावित हो सकती हैं।

रेडियो ट्रेसरों से भी विकिरण उत्पन्न हो सकता है। चिकित्सा, उद्योग, कृषि तथा जीवविज्ञान में रासायनिक तथा जैवरासायनिक प्रतिक्रियाओं की प्रक्रियां जानने के लिए रेडियो ट्रेसरों का काफी अधिक प्रयोग किया जाता है। रोगियों को दिए जाने वाले और विकिरण चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ परमाणु विकिरण से होने वाले नुकसान का महत्वपूर्ण स्रोत साबित हो रहे हैं। एक्स-रे, रंगीन टेलीविजन, घड़ियों के चमकीले डायल तथा एक्स-रे फ्लोरोस्कोप समस्या को और गंभीर बना रहे हैं।

विकिरण की रोकथाम तथा नियंत्रण

प्राकृतिक स्रातों से होने वाले विकिरण को तो नहीं रोका जा सकता है , परंतु निम्नलिखित उपायों से मानव निर्मित स्रोतों से होने वाले विकिरण को कुछ सीमा तक कम अवश्य किया जा सकता है।

- परमाणु परीक्षण केवल भूमिगत होने चाहिए।
- किन्हीं भी परिस्थितियों में खुले में परमाणु बमों का विस्फोट नहीं करना चाहिए।
- रेडियों ट्रेसरों का उत्पादन और उपयोग कम से कम होना चाहिए।

- विकिरण चिकित्सा का उपयोग तभी करना चाहिए जब वह नितांत आवश्यक हो और तब भी आवश्यक सीमा के भीतर।
- रेडियोसक्रिय कचरे के निपटान में बहुत अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

आइये, इस संबंध में और विस्तार से बताएं। परमाणु बिजलीघरों में तीन प्रकार का कचरा उत्पन्न होता है– निम्न स्तर, मध्यम स्तर और उच्च स्तर का। अभी तक निम्न स्तर के कचरे को और अधिक तनुकृत (पतला) करके समुद्र में बहा दिया जाता था। अब इसे निश्चित निपटान स्थलों पर जमीन में दबा दिया जाता है। उपचार प्रक्रियाओं तथा ईंधन के पुनः उपचार आदि के फलस्वरूप गाढ़े कीचड़ के रूप में निकलने वाले मध्यम स्तर के कचरे को रसायनों से उपचारित करके जमीन के नीचे स्टेनलेस स्टील के बड़े-बड़े टैंकों में इकट्ठा करके रखा जाता है। उच्च स्तर का कचरा तरल कचरा होता है जिससे काफी अधिक विकिरण निकलता है। इसे पर्यावरण में नहीं छोड़ा जा सकता है। वाष्पीकरण द्वारा पहले इन्हें सांद्रित किया जाता है, फिर कंक्रीट के खोल में बने दोहरी दीवारों वाले स्टेनलेस स्टील के टैंक में रखा जाता है। इस टैंक को जमीन के नीचे कंक्रीट की दीवारों वाले गड्ढे में दबा दिया जाता है। यहां पर 'विट्रीफिकेशन' प्रकिया द्वारा यह कचरा कांच जैसे ठोस ब्लाकों में बदल दिया जाता है।

विकिरण की अत्यंत कठोर मानीटरिंग और निगरानी के बावजूद नाभिकीय रिएक्टरों की सुरक्षा संदेहास्पद है। एक नाभिकीय रिएक्टर में जो सबसे भयनाक दुर्घटना घट सकती है वह है कि कहीं रिएक्टर का क्रोड़ (कोर) ही न पिघल जाए। इस तरह की दुर्घटना की संभावनाएं न के बराबर हैं। यह संभावना 17,000 वर्षों में एक रिएक्टर में एक आंकी गयी है। परमाणु वैज्ञानिकों का यह निष्कर्ष है कि विकिरण की मात्रा एक निश्चित सीमा में रखने के लिए लगातार निगरानी रखते हुए सुरक्षित सीमा के भीतर मानवता [illegible] नाभिकीय रिएक्टरों का उपयोग जारी रखना चाहिए।

9

शोर प्रदूषण–आधुनिक सभ्यता का अभिशाप

"शोर का स्तर हर 6 वर्ष में दोगुणा होकर हमारी सुनने की क्षमता को कम कर रहा है। यह संभव है कि सन् 2000 तक दस वर्ष की आयु से ऊपर का कोई भी व्यक्ति सामान्य रूप से न सुन सके।"

—एस. कामेश्वरन[9]

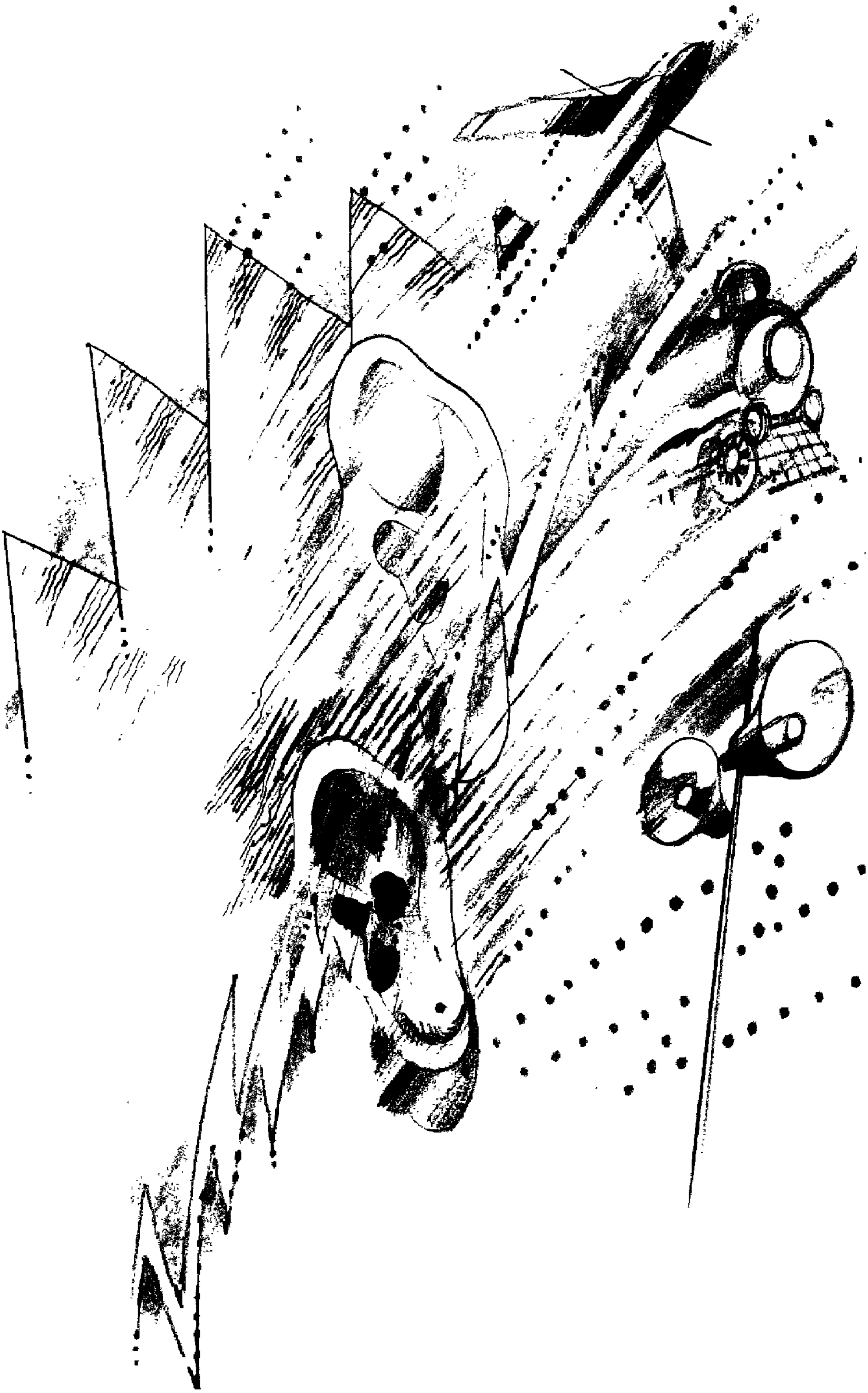
अभी तक हम पदार्थों द्वारा जनित विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों की बात करते रहे हैं। एक अजीब प्रकार का प्रदूषण जो पिछले दो दशकों के दौरान प्रकाश में आया है, वह है शोर प्रदूषण। जहां अन्य प्रकार के प्रदूषणों के प्रभाव को पलटा जा सकता (ठीक किया जा सकता) है, वहीं शोर द्वारा पैदा की गयी क्षति को ठीक नहीं किया जा सकता है। आग में घी के समान शोर का स्तर दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है जो काफी अधिक चिंता का विषय है। यातायात का शोर, चीखते हुए हार्न, हवा को चीरते हुए लाउडस्पीकरों का शोर तथा फिल्मों के और धार्मिक गानों तथा प्रवचनों का शोर शहरों में अनावश्यक शोर पैदा करते हैं। शोर प्रदूषण के तीन प्रमुख स्रोत हैं :

- उद्योग तथा मशीनें।
- यातायात (स्थल तथा हवाई यातायात)।
- सामुदायिक गतिविधियां (मनोरंजन, निर्माण कार्य आदि)।

औद्योगिक शोर, विशेष रूप से यांत्रिक आरों और गैस-यांत्रिक बर्मो का शोर, असहनीय हो सकता है और जनता के लिए मुसीबत बन सकता है।

सबसे अधिक शोर यातायात प्रणाली से उत्पन्न होता है। सड़क यातायात,

9. भारत के विख्यात कर्णविज्ञानी।



विशेषकर डीजल से चलने वाले भारी वाहनों और मोटर साइकिलों से उत्पन्न शोर मुसीबत हो सकता है। बड़े और तेज उड़ने वाले जेट वायुयानों का उपयोग भी एक संकट से कम नहीं है यदि हवाई पट्टी किसी पड़ोस की जगह पर स्थित हो। आवाज से तेज उड़ने वाले जहाजों का शोर वायुयानों से उत्पन्न शोर का नवीनतम पहलू है। जब कांकार्ड जैसा वायुयान वायु की गति से भी तेज उड़ते हुए सिर के ऊपर से गुजर जाए तब यह शोर सुनाई देता है। मनुष्य तथा जानवरों में अत्यधिक डर पैदा करने के साथ ही इससे संपत्ति को भी काफी क्षति पहुंचती है। इससे मानसिक वेदना भी पैदा हो सकती है।

हमारे सामुदायिक उत्सवों तथा समारोहों, जैसे शादियों और मेलों आदि, में बहुत शोर उत्पन्न होता है। डा. कामेश्वरन मानव के लिए जीवन की निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या करते हैं, "वह ट्रांजिस्टर और टेलीविजन के शोर से जागता है, शोर पैदा करने वाले उद्योग में काम करता है, अपने कार्यस्थल पर लाउडस्पीकरों के शोर से गूंजती हुई गलियों से होकर जाता है, और शाम को शोर-शराबे से भरे हुए अपने घर को लौटता है। यदि वह विश्राम के लिए सिनेमा देखने जाता है तो वहां भी शोर का स्तर बहुत अधिक होता है।"

शोर प्रदूषण के प्रभाव

भारत के विभिन्न शहरों और कस्बों में ध्वनि स्तर की जांच के लिए एक सर्वेक्षण किया गया। दिन के समय दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता और चेन्नई में शोर का स्वर 60-90 डेसिबल[10] के बीच पाया गया। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद की एक रिपोर्ट के अनुसार कलकत्ता की लगभग दस प्रतिशत आबादी में शोर प्रदूषण के कारण सुनने की क्षमता कम हो गयी है। अचानक तेज शोर के प्रभाव से कान के पर्दे को काफी क्षति पहुंचती है। शोर प्रदूषण का एक अधिक गंभीर प्रभाव है आंतरिक कान में रोम कोशिकाओं को होने वाली चिरकालिक क्षति। अधिक समय तक एक निश्चित आवृति के शोर के प्रभाव से सुनने की शाक्ति अस्थाई अथवा स्थाई रूप से समाप्त हो जाती है।

क्राइटर (1970) के अनुसार शोर से हृदय से पंप होने वाली रक्त की मात्रा घट जाती है। धमनियों के रक्तदाब में उतार-चढ़ाव आने लगता है और शरीर

10. डेसिबल एक गैरआयामी इकाई है जिसका मुख्य रूप से ध्वनिविज्ञान एवं दूर संचार में ध्वनि दाब स्तर व्यक्त करने में उपयोग किया जाता है।

के बाहरी हिस्से की रक्त वाहिनियां संकुचित[11] हो जाती हैं। एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार अधिक शोर में रक्त गाढ़ा हो जाता है। शोर के कारण तथा शरीर के अन्य तरल पदार्थों के स्तर में परिवर्तन हो जाने से इओसिनोफीलिया (इओसिनरागी कोशिका बहुलता), हाइपरग्लाइसीमिया (अतिग्लूकोसरक्तता), हाइपोकैलीमिया (अल्प पोटैशियम) और हाइपोग्लाइसीमिया (अल्पग्लूकोस रक्तता) भी हो जाता है।

यहां पर 'चौंकाने वाली प्रतिक्रिया' के बारे में बताना जरूरी है जिसमें अचानक अधिक तीव्र स्पंदन वाली ध्वनि हमारे तंत्रिका तंत्र तथा मनोप्रेरक दक्षता को प्रभावित करती है। यहां तक कि हमारी दृष्टि प्रणाली इसके प्रभाव से अछूती नहीं रहती है। शोर के कुछ हानिकारक प्रभाव हैं—पुतलियों का फैल जाना, रात में दिखायी देना कम हो जाना और रंगों में पहचान कर पाने की दर घट जाना।

शोर का नींद तथा कार्य निष्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव घड़ी की मरम्मत करने वालों तथा उन कार्यों में लगे लोगों पर अधिक स्पष्ट होता है जिनमें अधिक सूक्ष्मता निहित होती है।

शोर प्रदूषण का नियंत्रण तथा रोकथाम

- ध्वनि उत्पन्न करने वाले स्रोत से ही शोर में कमी। उदाहरण के लिए पंखे से होने वाले शोर को ब्लेडों की संख्या बढ़ाकर अथवा उससे निकलने वाली हवा को कम किए बिना ही उसके घूमने की गति कम करके, कम किया जा सकता है।
- शोर पैदा करने वाली मशीनों अथवा उपकरणों को ध्वनिरोधी पदार्थों से ढंककर।
- सुनने की क्षमता में कमी को रोकने के लिए कानों को ढंकने वाली सुरक्षात्मक युक्तियों का उपयोग किया जा सकता है।
- वायु अथवा ठोस पदार्थों से होकर ध्वनि को फैलने से रोकने के लिए ध्वनि क्षेत्रों का निर्माण करना चाहिए।
- शोर को कम करने के लिए कारखानों के भीतर तथा उनके आसपास अधिक संख्या में पेड़ लगाने चाहिए।

---

11. यह एक ऐसा शरीर क्रिया विज्ञानी प्रभाव है जिसमें शरीर की छोटी रक्त वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं और रक्त का प्रवाह कम हो जाता है।

हार्न बजाना कम करके सड़क यातायात से होने वाले शोर को कम किया जा सकता है। सड़कों अथवा राजमार्गों के दोनों ओर पेड़ लगाने चाहिए। ये पेड़ प्रतिरोधक की तरह काम करते हैं और शोर के स्तर को कम करते हैं। वाहनों की रफ्तार कम रखने के लिए बनाए गए नये यातायात नियमों को कड़ाई से लागू करने से भी लाभ हो सकता है। अधिक शोर पैदा करने वाले पुराने वाहनों को नये लाइसेंस नहीं दिए जाने चाहिए।

लाउडस्पीकरों को जोर-जोर से बजाने पर प्रतिबंध लगाकर तथा उनकी आवाज कम करके सामुदायिक स्तर होने वाले शोर को कम किया जा सकता है। अस्पतालों और स्कूलों के पास तो यह विषेष रूप से आवश्यक है। त्योहारों तथा जुलूसों के दौरान अधिक शोर पैदा करने वाले पटाखों के दागने पर प्रतिबंध होना चाहिए।

आवाज बहुत प्यारी हो सकती है जैसे कि संगीत, गायन अथवा हंसने की आवाज, लेकिन तभी तक जब यह स्वयं को सुनाई देने की सीमा में हो और पड़ोसियों को जबरदस्ती न सुनाई जाए। यह प्रमाणित हो चुका है कि लगातार तेज शोर सुनने की क्षमता कम कर सकता है और तंत्रिका विकारों से संबंधित समस्याएं पैदा कर सकता है।



10

वन–एक राष्ट्रीय संपत्ति

"एक राष्ट्र अपने पेड़ों के साथ उन्नति करता है।
पेड़ों की रक्षा करें, राष्ट्र की रक्षा करें।"

वनों को एक देश का 'हरा सोना' माना जाता है। मनुष्य तथा अन्य जीवित प्राणियों का जीवित रहना वृक्षों और पौधों पर निर्भर करता है जो हमारे श्वसन के लिए आवश्यक आक्सीजन के प्रमुख स्रोत हैं। वृक्ष और पौधे मनुष्य तथा जंतुओं द्वारा सांस के साथ निकाली गयी और उद्योगों की चिमनियों एवं मोटर वाहनों द्वारा उगली गयी कार्बन डाईआक्साइड के लिए 'सिंक' का भी काम करते हैं।

भारतीय प्रायद्वीप में धरती का लगभग पांचवा हिस्सा जंगलों से आच्छादित है। जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारत विश्व के अति समृद्धिशाली देशों में से एक है जहां के वनों में पौधों की 15,000 प्रजातियां (वृक्षों की 5000 प्रजातियां तथा झाड़ियों अर्थात् छोटे पौधों की 10,000 प्रजातियां) पायी जाती हैं। भारतीय वनों में अनेक किस्मों के जानवर काफी अधिक संख्या में पाए जाते हैं। यह ज्ञात हुआ है कि भारतीय जंगलों में सरीसृपों की 500 प्रजातियां, पक्षियों की 2,100 प्रजातियां और विभिन्न प्रकार के कीटों की 30,000 प्रजातियां पाई जाती हैं।

हमारे जीवन तथा राष्ट्र की समृद्धि को बनाए रखने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वनों से आक्सीजन प्राप्त होती है जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं है। वे वातावरण में गैसों का स्वस्थ संतुलन बनाए रखते हैं। वे जलवायु के महान नियामक हैं। पौधे अपनी खुली सतह से वाष्पोत्सर्जन द्वारा जलवाष्प निष्कासित करके आर्द्रता (नमी) बनाए रखते हैं।

जैसा कि हम सबको पता है वन मिट्टी के क्षरण और भूस्खलन को काफी नियंत्रित रखते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में वन अपनी दूर-दूर तक फैली जड़ों से नदियों

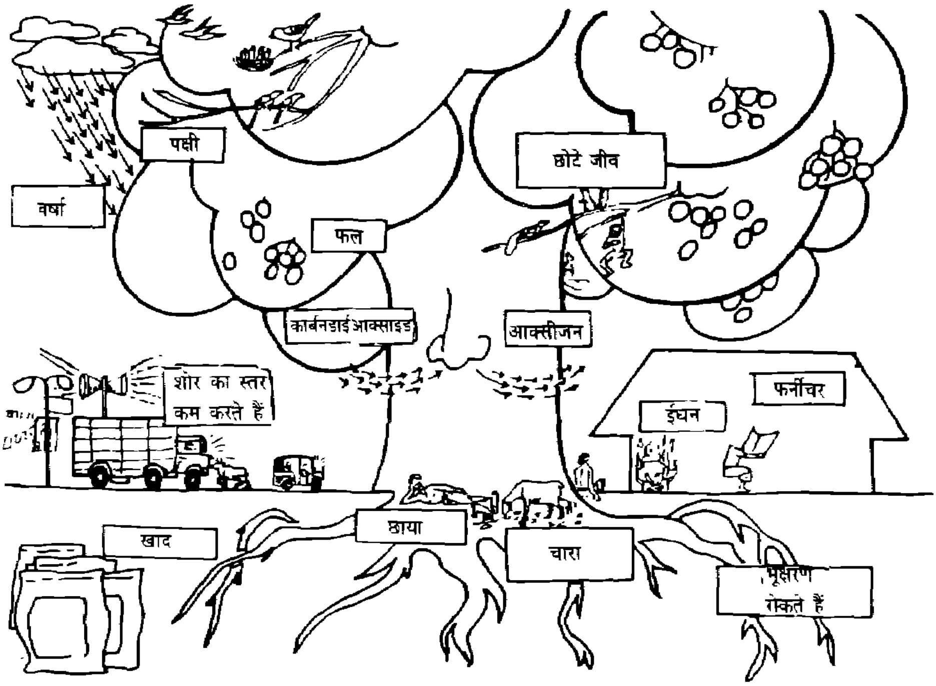
के किनारों की मिट्टी को आपस में जकड़े रहते हैं। वे पहाड़ों के ढलान के स्थायित्व को भी बरकरार रखते हैं। पौधों का जमीन के ऊपर वायु में मौजूद हिस्सा बरसात में पानी के वेग को अपने में ही उलझाकर उसकी क्षरण शक्ति को कम कर देता है। वनों में धरती पर पाए जाने वाले छोटे-छोटे पौधे, जमीन पर गिरी हुई पत्तियों की मोटी तह और खाद-मिट्टी स्पंज का काम करती है तथा बरसात एवं बर्फ के पिघलने से आए पानी को बचाकर रखने में सहायता करती है। इस तरह से मैदानों में बाढ़ का प्रकोप कम होता है। पहाड़ियों से गिरने वाले पानी के वेग को कम करके वन मैदानों में मिट्टी को अधिक पानी अवशोषित करने में सहायता करते हैं और इस प्रकार सूखे को रोकते हैं क्योंकि मिट्टी में नमी मौजूद रहती है। पहाड़ियों से धीरे-धीरे आने वाला पानी बारहों महीने पानी से भरे रहने वाले चश्मों तथा छोटी-छोटी नदियों को जन्म देता है।

पदार्थों के रूप में वनों से होने वाले लाभों के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है। सदियों से वन हमें ईंधन, चारा और इमारती लकड़ी उपलब्ध कराते आ रहे है; हमारे अनेक उद्योग कुछ ऐसे संसाधनों पर आधारित हैं जो जंगलों में पाए जाते हैं। कागज की लुगदी, रेयान तथा प्लाईवुड उद्योग पूरी तरह वनों से प्राप्त उत्पादों पर आधारित हैं। पौधों से हमें औषधियां, मसाले, फल, तन्तु, गोंद, राल, रबड़ और क्षीर प्राप्त होते हैं। हर्र-बहेड़ा, तेलबीज, शहद, मोम, बीड़ी बनाने की पत्तियां और चंदन सहित रंगाई एवं चमड़ा शोधन उद्योगों के लिए कच्चा माल वनों से ही प्राप्त होता है। एक आकलन के अनुसार इन उत्पादों तथा इमारती लकड़ी से होने वाली राष्ट्रीय आय 600 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष से अधिक है।

देश भर के जंगलों में लगभग 4 करोड़ आदिवासी निवास करते हैं। वे न केवल वानिकी के कार्यों में हाथ बटांते हैं, बल्कि वे वनों के पर्यावरण का अभिन्न अंग है। उनकी कुछ मौलिक आवश्यकताएं जैसे भोजन, चारा और रहने की जगह जंगलों से ही पूरी होती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वन हमारे पर्यावरण की रक्षा करते हैं, पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखते हैं, प्रदूषण तथा शोर को घटाते हैं, आंधी और बरसात से होने वाले भूक्षरण को रोकते हैं, बालू को एक जगह जमा होने देने तथा रेगिस्तान बनने से रोकते हैं, धरती को अधिक सुंदर और आकर्षक बनाते हैं तथा ऊर्जा की समस्या को हल करने में सहायक होते हैं। परंतु हमारी यह राष्ट्रीय संपदा अब समाप्त हो रही है।

कुछ वर्षों में हमारी जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। इसके परिणाम



स्वरूप ईंधन और इमारती लकड़ी की आवश्यकता कई गुणा बढ़ गयी है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए लाखों वृक्षों को काटना पड़ता है। कर्नाटक में राज्य सरकार मिलों को प्रतिवर्ष 1,60,000 टन बांस काटने की सरकारी अनुमति देती है। परंतु लकड़ी के अनधिकृत व्यापारी इससे कहीं ज्यादा बांस काट डालते हैं। उत्पादन एवं विकास के नाम पर वृक्षों की कटान से पहाड़ियों की ढलानों पर वन पूरी तरह समाप्त हो गए हैं और पहाड़ियां नंगी हो गयी हैं। जिन संसाधनों पर लोगों का भविष्य टिका हुआ है उन्हीं संसाधनों को नष्ट करने का कार्य सोने का अंडा देने वाली बतख को मारने के समान है। इस तरह के कार्य भारत के अनेक भागों में बेरोकटोक चल रहे हैं। हाल ही में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि हिमालय, पश्चिमी घाट तथा शिवालिक की पहाड़ियों के अधिकांश जंगल कट गये हैं। उपग्रह से लिए गए चित्र से पता चलता है कि 13 करोड़ वर्गमीटर प्रतिवर्ष की दर से जंगलों का विनाश हो रहा है।

एक रिपोर्ट के अनुसार 1972 से 1982 के 10 वर्षों के दौरान पंजाब में वनों का क्षेत्रफल 1,200 वर्ग किलोमीटर से घटकर 490 वर्ग किलोमीटर रह गया है। हरियाणा में भी वनों के विनाश की दर कम नहीं है। हिमालय क्षेत्र के अधिकांश वन काटे जा चुके हैं और महिलाओं को अब जलाऊ लकड़ी इकट्ठी

करने के लिए कई-कई किलोमीटर चलना पड़ता है। वह दिन अब अधिक दूर नहीं है जब हमारी धरती पर वन रह ही नहीं जायेंगे।

वनों के इतने अधिक विनाश का क्या कारण है ? पहला कारण है हमारी लगातार बढ़ती जनसंख्या और उसकी निपट गरीबी। लोग यह मानते हैं कि वन उनके लिए खुले खजाने की तरह हैं जिनका वे जैसा चाहें वैसा उपयोग कर सकते हैं। वे जलाऊ लकड़ी प्राप्त करने के लिए, पशुओं को चराने के लिए तथा जंगलों से जो भी चाहें उसे प्राप्त करने के लिए वृक्षों को काटते हैं। हमारी जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता प्रतिवर्ष 33 करोड़ घन मीटर है। दूसरा कारण है हमारे जंगलों के ठेकेदारों का लालच, जो समस्या को और गंभीर बना देता है। वन अधिकारियों से जितने पेड़ों को काटने की अनुमति मिलती है, लालची ठेकेदार व्यापारिक उद्देश्यों के लिए उससे कहीं अधिक पेड़ों को काट डालते हैं (नये तथा पुराने दोनों तरह के)। थोड़े समय में ही अधिक पैसे कमाने के लिए पेड़ों की गैरकानूनी कटाई से बहुत बड़े हिस्से से जंगल नष्ट हो गये हैं।

खनन भी वनों के इस तरह से नष्ट होने का प्रमुख कारण हैं। हमें खनिजों की आवश्यकता तो है, परंतु हमें अपने समृद्धशाली वनों को भी बचाना होगा। दुर्भाग्यवश सरकार को यह समझने में काफी समय लगा कि खनन के कारण जंगलों की कटाई हमारी भावी पीढ़ियों को संकट में डाल रही है। उदाहरण के लिए मध्यप्रदेश में मैकाल की पहाड़ियों में बाक्साइट के खनन से वनों का तेजी से विनाश हुआ है। मैकाल की पहाड़ियां हमारे देश में सबसे महत्वपूर्ण जलसंभर हैं जहां से नर्मदा नदी तथा सोन एवं हसदेव निकलती हैं।

चौथा कारण है वन क्षेत्रों को खेती योग्य भूमि में बदलना। इस तरह के वन क्षेत्र में सेब और चाय की खेती प्रमुख कृषि गतिविधियां हैं। सेब की खेती के लिए हिमालय क्षेत्र के काफी बड़े हिस्से से वनों को काट डाला गया है। विख्यात चिपको आन्दोलन के जनक सुंदरलाल बहुगुणा ने इसकी इस प्रकार से व्याख्या की है; "सेब की खेती तथा उनकी पैकिंग के लिए डिब्बे तैयार करने के लिए वनों की कटाई, चीड़ और देवदारू के वनों से अंधाधुंध राल निकालने और पहाड़ी क्षेत्रों में मोटर वाहनों के लिए सड़कों का निर्माण—इन सभी से हिमालय के वनों का काफी विनाश हो रहा है। इन सबके प्रतिफल के रूप में भूस्खलन, बाढ़ आने और बांधों में गाद भरने की घटनाएं बढ़ गयी हैं।"

वनों की कटाई के गंभीर परिणामों को महत्व देना बहुत आवश्यक है। वनों के कारण पहाड़ियों से होकर तेजी से गुजरने वाले पानी की गति कम हो जाती है जिससे भूक्षरण काफी हद तक रुक जाता है। इस तरह से भूक्षरण रुकने

के बावजूद भूक्षरण के कारण होने वाली क्षति की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रतिवर्ष भूक्षरण से 530 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बह जाती है जो कि 3 से 5 करोड़ टन अनाज की क्षति के बराबर है। यदि वनों के विनाश की यही रफ्तार जारी रही (75 करोड़ वर्गमीटर/वर्ष) तो भूक्षरण की समस्या बहुत बड़ा आकार ले लेगी। पानी के संरक्षण में वनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वृक्षों की जड़ें मिट्टी को आपस में जकड़े रहती हैं और यह मिट्टी पानी को अवशोषित करती हैं। मिट्टी की ऊपरी सतह बहुत उपजाऊ होती है और इसके बिना मिट्टी में कुछ नहीं उग सकता। प्रकृति को मिट्टी की ऊपरी सतह की पतले सी परत बनाने में हजारों वर्ष लगते हैं। राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय के अनुसार हमारे द्वारा बिना सोचे-समझे वृक्षों की कटाई और पेड़ पौधों को नष्ट करने से 6 महीने के अंदर ही ऊपरी सतह की उतनी मिट्टी बह जाती है जितनी भारत में ईंट के सभी मकानों को बनाने में खर्च हुई है। भूक्षरण से बांधों और तालाबों में काफी गाद जमा हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप जलाशयों की जल भंडारण क्षमता समाप्त हो जाती है (हमारे बहुत से जलाशयों में पहले ही काफी गाद जमा हो चुकी है)।

जंगलों में वृक्ष न रह जाने से बरसात का पानी तेजी से नीचे की ओर भागता है जिससे बाढ़ आती है। वर्षा जल के बहाव की गति अधिक होने के कारण यह पानी छनकर भूमिगत जल में नहीं मिल पाता है जिससे भूमिगत जल की मात्रा बढ़ पाना संभव नहीं होता है। इसका कुल परिणाम होता है चश्मों, झीलों और तालाबों का सूखना। इन सबके फलस्वरूप काफी अधिक क्षति होती है, गरीबी बढ़ती है और लोगों की मुसीबतें भी बढ़ती हैं। गरीबी को बढ़ाने के अतिरिक्त इससे मौसम में कभी न ठीक होने वाले परिवर्तन होते हैं। सूखा, भुखमरी, बाढ़ और दुख अपरिहार्य हो जाते हैं।

वनों के नष्ट होने से केवल हिमालय को ही नहीं बल्कि कर्नाटक से होकर गुजरने वाले पश्चिमी घाट के वनों को भी काफी अधिक क्षति हुई है। तमिलनाडु के नीलगिरि जिले में लगभग 680 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भूक्षरण से प्रभावित हुआ है। केरल के पहाड़ी वनों के विनाश से भूक्षरण का काफी खतरा उत्पन्न हो गया है। पूर्वी घाट के वन भी विनाश का शिकार हुए हैं। पहले लहलहाते वनों से ढकी हुई पर्वत शृंखलाएं अब बिल्कुल बंजर भूमि में बदल गयी हैं। इन वनों में वर्ष भर पानी से भरे रहने वाले चश्में और नदियां अब सूख गयी हैं।

वनों की कटाई ने पारिस्थितिक तंत्र को भी प्रभावित किया है। पक्षियों तथा जंतुओं की [illegible] प्रजातियां इतनी अधिक प्रभावित हुई है कि वे विलुप्त

होने के कगार पर पहुंच गयी है। रेड डेटा बुक (जिसमें विलुप्त हो रहे पक्षियों और जंतुओं का ब्योरा होता है) के अनुसार पक्षियों की 139 और जंतुओं की 106 प्रजातियां पहले ही विलुप्त हो चुकी हैं। इसका प्रमुख कारण है वनों का विनाश।

वन क्षेत्रों का बढ़ाना तथा उन्हें सुदृढ़ करना दोनों ही काम आवश्यक हो गये हैं क्योंकि हमारे पास जितने वन हैं वे हमारी लकड़ी की जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी नहीं हैं। जमीन के खाली पड़े हिस्सों का, चाहे वे सरकारी हों अथवा सार्वजनिक, अधिक लकड़ी उत्पादन के लिए उपयोग करना आवश्यक है और यह केवल पेड़ लगाकर ही किया जा सकता है। गुजरात सरकार ने ऐसी सहकारी संस्थाओं की स्थापना में सफलता पाई है जिन्होंने व्यापक पैमाने पर पेड़ लगाने और सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। लेकिन जो गुजरात में किया जा रहा है उतना भर ही काफी नहीं है। इसे पूरे देश में और पूरे विश्व में लागू करना होगा। जमीन के प्रत्येक खाली टुकडे का विभिन्न प्रकार के पेड़ लगाने में उपयोग किया जाना जरूरी है। इन पेड़ों से हमें लकड़ी, ईंधन फल और छाया मिलेगी। सबसे जरूरी यह है कि हम जो भी वृक्ष लगाएं, उन्हें सुरक्षा दें और उन्हें पूरे आकार का बड़ा होने दें।

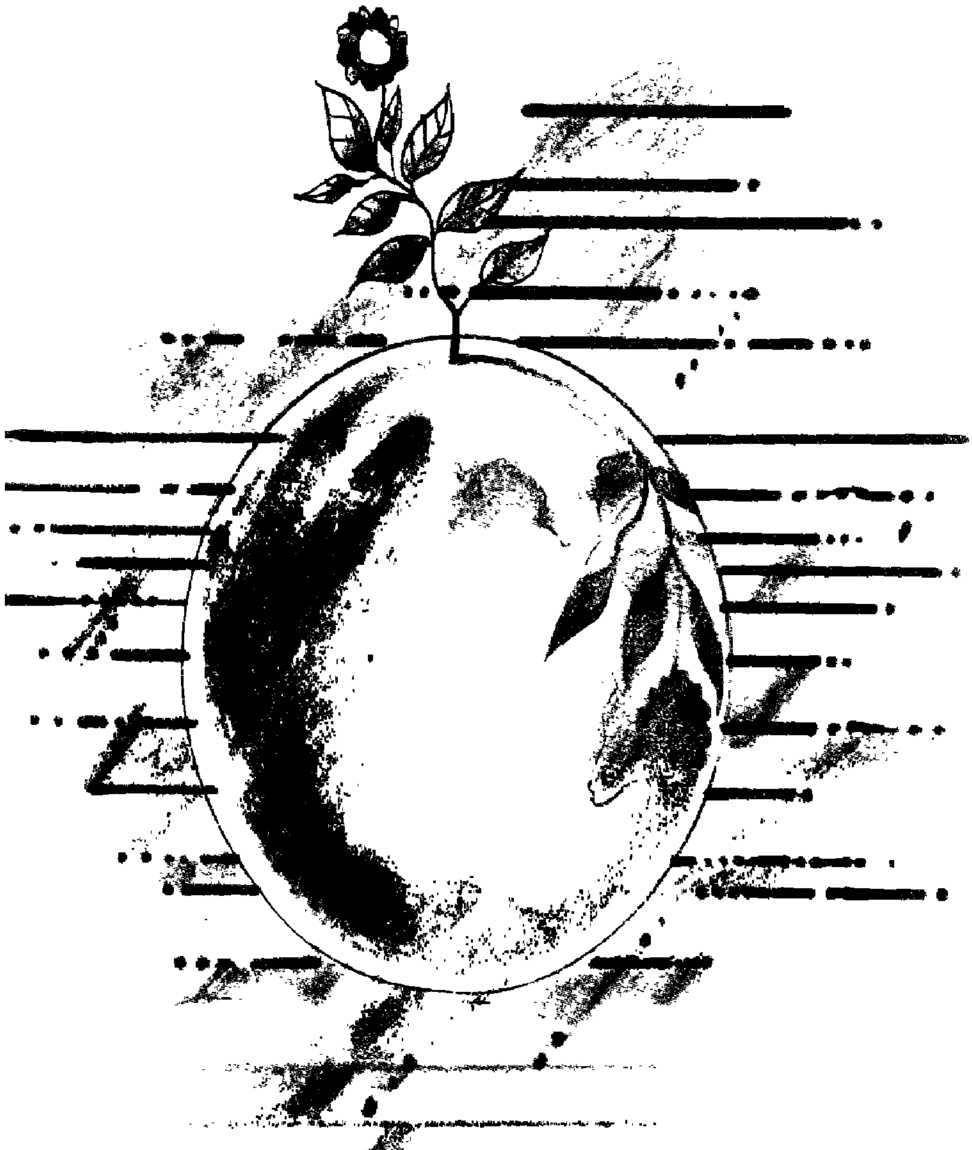
वनों की कटाई के कारण होने वाली व्यापक पर्यावरणी क्षति से अपनी धरती को बचाने के लिए जनसामान्य को शिक्षित करना आवश्यक है ताकि उन्हें पेड़ों की गैरकानूनी कटाई के प्रति सचेत किया जा सके और यह बताया जा सके कि वन, वर्षा, जंगली जीव और कृषि एक दूसरे से जुड़कर ऐसा तंत्र बनाते हैं जो हमारी पारिस्थितिकी को और मानव जीवन को बनाए रखता है। वृक्ष हमारे हाथ-पांव हैं और हर बार जब कोई वृक्ष कटता है तो हमारी जीवित रहने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

सरकार अब जाग गयी है और उसने वन लगाने की बहुत सी योजनाएं प्रारंभ की हैं। वनों को संरक्षण प्रदान करने के अधिनियम लागू किए गये हैं। वन लगाने के कार्यक्रमों को और तेज करना होगा, हालांकि भारत में वनों को बचाने के लिए प्रारंभ किये गए दो आंदोलन बहुत लोकप्रिय हो गये हैं। हिमालय क्षेत्र की नदियों के ऊपरी कछार में वनों के विनाश के विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए सुंदरलाल बहुगुणा द्वारा प्रारंभ किए गए चिपको आंदोलन के अतिरिक्त कर्नाटक में 'आपिको' आंदोलन शुरू किया गया। इस आंदोलन में आंदोलनकर्ता तथा बच्चे पेड़ों को कटने से बचाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर उनसे चिपक जाते हैं।

स्वस्थ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए देश की कुल धरती में एक तिहाई हिस्से पर वन होने चाहिए जबकि वास्तव में केवल दस प्रतिशत जमीन पर अच्छे वन हैं (नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी, 1982)। भारत में प्रतिवर्ष 13 करोड़ वर्गमीटर वनों का विनाश हो रहा है। यदि हमें देश के वनों का क्षेत्रफल बढ़ाना है तो वन लगाने की योजनाओं के साथ-साथ गैरकृपियोग्य भूमि तथा परती भूमि पर भी वन लगाने होंगे।

वन लगाना वनों के विनाश तथा पेड़ों की कटाई का समाधान है। केवल इससे ही दूर-दूर तक फैली हुई परती और बंजर भूमि को लहलहाते वनों में बदला जा सकेगा जिससे राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि होगी। वन लगाने की योजनाओं से ईंधन, चारा, आदि की बढ़ती मांग को पूरा किया जा सकेगा और साथ ही इससे पर्यावरण की सुरक्षा भी होगी।

लोगों को चाहिए कि वे और अधिक पेड़ लगायें और लगे हुए पेड़ों की सुरक्षा करें। बच्चों को भी अपने आस-पड़ोस में पेड़ लगाने की शिक्षा देनी चाहिए। हमें स्वयं अपने बारे में न केवल एक लाभार्थी के रूप में सोचना होगा बल्कि उस संपत्ति के न्यासी के रूप में सोचना होगा जो हमारे वनों के माध्यम से हमें मिलती है। आज के बाद हमारा नारा होना चाहिए 'आज एक वृक्ष लगाओ और रोजाना उसकी देखभाल करो'।



11

धरती को बचायें

"हमने धरती अपने पूर्वजों से विरासत में पायी है। हम इसे अपने बच्चों और नाती-पोतों के लिए संदूषित करके न छोड़ें..."

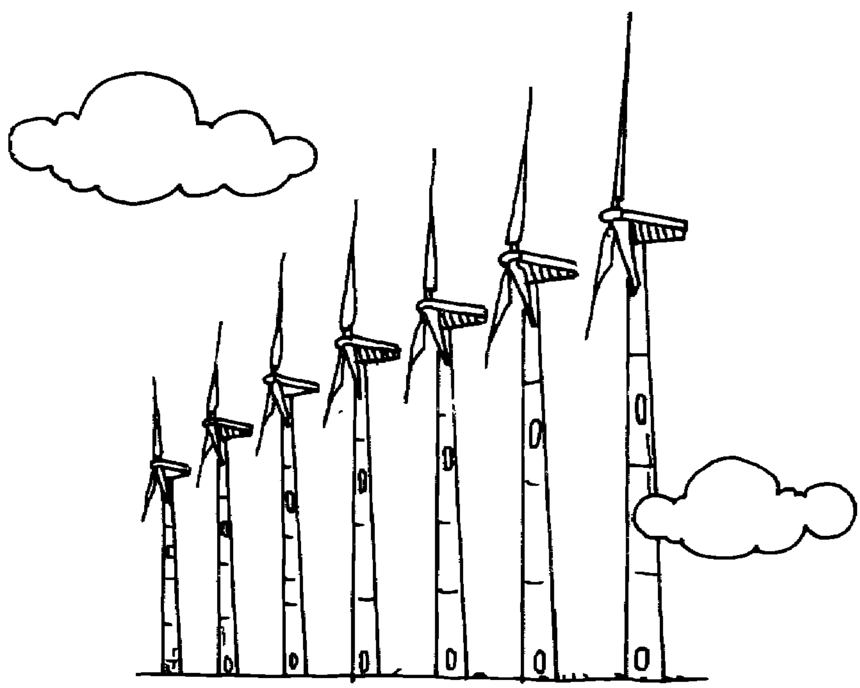
पहले के अध्यायों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो धरती हमें खाने के लिए भोजन देती है, रहने के लिए घर देती है, वह संकट में है। मनुष्य के लालच ने प्राकृतिक भंडारों और संसाधनों को खाली कर दिया है। यदि युद्ध सतर पर कदम न उठाए गये तो धरती हमारे भरण-पोषण की क्षमता खो देगी और हमें तथा अन्य सभी जीवित प्राणियों को जीने के साधनों से वंचित कर देगी।

स्टाकहोम में 1972 में सम्पन्न हुए अंतर्राष्ट्रीय मानव पर्यावरण सम्मेलन में स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था, "रहने अथवा भोजन, पानी, सफाई और सिर छुपाने के लिए स्थान मुहैया कराने, रेगिस्तानों को हरा-भरा करने और पहाड़ों को रहने योग्य बनाने हेतु पर्यावरण में सुधार लाने के लिए विकास एक प्रमुख साधन है।" जनसंख्या वृद्धि पर पूरी तरह रोक तो नहीं लगायी जा सकती, परंतु सरल सस्ते उपायों को अपनाकर प्रदूषण का स्तर कम से कम किया जा सकता है। हम पृथ्वी से जितना कुछ लेते हैं, उससे अधिक उसे लौटाना होगा। उदाहरण के लिए वनों को काटने के पश्चात वन लगाए जाने चाहिए। प्रत्येक कटने वाले वृक्ष के बदले में एक वृक्ष अवश्य लगाएं। जहां कहीं वायु प्रदूषण अधिक हो वहां प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों के आसपास अधिक संख्या में प्रदूषण का मुकाबला करने वाले पेड़ लगाए जाने चाहिए। यह काम स्वयं संबंधित उद्योग को ही करना चाहिए। आंध्रप्रदेश में विशाखापट्टनम स्टील संयंत्र ने अपने परिसर में 20 लाख से भी अधिक वृक्ष लगाए हैं। उन्होंने एक नारा भी तैयार किया है, "तैयार होने वाले प्रत्येक टन तरल स्टील के लिए एक वृक्ष"। जस्ता तथा सीसा के अग्रणी निर्माता दि हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड का कथन है,

"हम केवल पर्यावरण का आनंद ही नहीं लेते हैं, हम इसकी सुरक्षा भी करते हैं।" और इसे साबित करने के लिए उसने अपने परिसर में तथा आसपास के गांवों में हजारों वृक्ष लगाए हैं। दि इंडियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड ने अपनी तेल शोधक इकाइयों के आसपास हरित-पट्टियां विकसित की हैं और वर्ष 1991 के दौरान इसने एक लाख से अधिक वृक्ष लगाए हैं।

प्रदूषण को कम करने में कचरे के पुनः उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उपयुक्त उपचार के बाद व्यर्थ पानी का कृषि तथा जल-जीवों की फसल प्राप्त करने में उपयोग किया जा सकता है। भारत की अधिकांश कागज बनाने वाली मिलें कारखाने से निकलने वाले अपशिष्ट जल का धान तथा गन्ने की खेती में उपयोग करती हैं। औद्योगिक कचरे तथा ठोस कचरे का पुनः उपयोग करके उनसे उपयोगी वस्तुएं तैयार करने का कार्य धीरे-धीरे महत्व प्राप्त कर रहा है।

चूंकि हमारे प्राकृतिक संसाधन तेजी से समाप्त हो रहे हैं, इसलिए हमें ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग करना होगा। उदाहरण के लिए पवन ऊर्जा से बिजली बनायी जा सकती है और इस पर बहुत ही कम लागत आती है तथा पर्यावरण को कोई नुकसान भी नहीं होता है। सागर की लहरों तथा सौर ऊर्जा



का उपयोग करने की प्रौद्योगिकी विकसित करनी होगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी अथवा कोयला जलाने के स्थान पर बायो-गैस बनाने के बड़े संयंत्र लगाये जा सकते हैं ताकि घरों को खाना बनाने की गैस की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके (पंजाब में इस तरह की एक सांझा इकाई कार्य कर रही है)। घरों में ईंधन की खपत और प्रदूषण को कम करने के लिए उच्च क्षमता वाले बर्नरों और धुआंरहित चूल्हों का उपयोग किया जा सकता है।

जैसा कि पहले बताया गया है लगभग 80 प्रतिशत प्रदूषण समृद्धशाली राष्ट्रों द्वारा होता है जो विश्व का केवल 25 प्रतिशत हिस्सा हैं। लेकिन विश्व के बाकी 75 प्रतिशत राष्ट्रों को भी इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। विकसित देशों में रहने वाले लोग बिना किसी रोक-टोक के अपने प्राकृतिक भंडारों का दोहन करते हैं जिससे पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, ओजोन की सुरक्षात्मक परत नष्ट हो रही है और अम्लीय वर्षा की घटनाएं बढ़ रही हैं। अब समय आ गया है कि वे अपनी जीवन शैली में बदलाव लाएं ताकि विश्व को प्रदूषण-मुक्त किया जा सके।

इन सबके ऊपर पर्यावरण संरक्षण को लेकर मानव प्रवृत्ति अधिक महत्वपूर्ण है। यदि प्रत्येक नागरिक गलियों में कूड़ा-कचरा न फेंकने और गलियों को कूड़ादान न समझने का निर्णय ले ले तो अधिकांश शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता से जुड़ी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं सुलझ जायेंगी।

यह नितांत एक मूर्खता है कि हम प्रगति के नाम पर अपने वनों को नष्ट कर रहे हैं और अपने पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ रहे हैं। व्यापक स्तर की दूरगामी योजनाओं के अभाव में शहरीकरण ने अनेक शहरी तथा उपशहरी क्षेत्रों को व्यवसायिक जंगलों में बदल दिया है। जमीन के इस गलत उपयोग का एक गंभीर परिणाम है विभिन्न प्रकार के जीवों की समाप्ति। शहरों की वृद्धि, कृषि के प्रसार, बांधों के निर्माण तथा वनों के विनाश से जंगली जीवों के आवास नष्ट हुए हैं। जीवों की बहुत-सी प्रजातियों और उपप्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

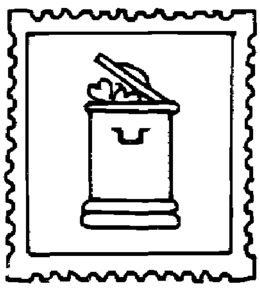
जंगली जीवों के आवासों को नष्ट करने के अतिरिक्त हम जानवरों और उनके भोजन को, पीड़कनाशियों, खर-पतवारनाशियों तथा दूसरे रसायनों से विषाक्त कर रहे हैं। ये रसायन मछलियों, पक्षियों और लाभदायक कीटों को मार रहे हैं। ये मानव जीवन के लिए भी खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। प्रतिवर्ष इनसे हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हुई है और अनेक व्यक्ति बीमार हुए हैं। अब वह

समय आ गया है जब हम परिस्थिति की गंभीरता को पहचाने और इस प्रकार से कार्य करें जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए इस धरती पर जीवन और अधिक जीने योग्य बन सके। यह सच है कि मनुष्य जीवित रहना चाहता है और इसके लिए उसे चाहिए सांस लेने योग्य हवा तथा पीने योग्य पानी। उसे चाहिए साफ नीला आसमान, स्वच्छ नदियां तथा हरे-भरे वन। परंतु उसे इसकी कीमत चुकानी होगी।

पर्यावरण प्रकृति का वेशकीमती उपहार है। पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखना हमारा प्रमुख कर्तव्य है। हमें चाहिए कि हम पृथ्वी को हरा-भरा रखें ताकि हम प्रदूषण से मुक्त वातावरण में साथ-साथ रह सकें। हमें स्वयं को बचाने के लिए पर्यावरण को बचाना होगा। अन्यथा वह दिन अब दूर नहीं जब मनुष्य स्वयं एक संकटग्रस्त प्रजाति हो जाएगा।



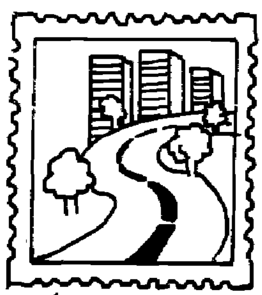
कूड़ा-कचरा न फैलायें



कूड़ादानों का
उपयोग करें



कचरे को थैलों
में डालें



अपने आस-पड़ोस
को साफ रखें

संदर्भ सूची

अध्याय 1

अर्ने वेसिलिंड, पी. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन एंड कंट्रोल,* एन अर्बर, मिशिगन, 1975

डेट्वेयर एवं थामस, आर. (संपादक) : 'डाइमेंशंस एंड पर्सपेक्टिव्स'', पेपर्स आफ दि वर्ल्ड कांफ्रेंस आन पाल्यूशन

हर मजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : ''रायल कमीशन आन एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,'' प्रथम रिपोर्ट, एच एम एस ओ लंदन, 1971

हर मजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : 'पाल्यूशन न्यूसेन्स ऑर नेमेसिस'', एच एम एस ओ, लंदन, 1972

हर मजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : ''दि प्रोटेक्शन आफ दि एनवायरनमेंट'', एच एम एस ओ, लंदन, 1972

के. माधव शर्मा :''फार हारमोनी विद नेचर'', *दि हिंदू, सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1991

कृष्णमूर्ति, सी. आर. : ''वी ब्रीद एंड ड्रिंक पायजन'', *दि हिंदू,* 20.5.78

लक्ष्मी, एन. अहाना : ''सेव आवर एनवायरनमेंट'', *दि हिंदू,* 8.5.84

लेविस हावर्ड, आर. : *विद एव्री ब्रीद यू टेक,* क्राऊन पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1965

नायक, गीतांजली, पी. : *पाल्यूशन-इट्स कंट्रोल, टुडे एंड टुमारो,* इंडियन एसोसिएशन फार एनवायरनमेंटल मैनेजमेंट, खंड 16, संख्या 1, फरवरी 1989

नारायण, के. वी. : ''क्योर दि अर्थ नाऊ'', *दि हिंदू,* 17.5.92

पद्मनाभन, बी.एस. : ''ग्रोईंग प्राब्लम्स,'' *दि हिंदू, सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1991

सन्नी सेबेस्टियन : ''एनवायरनमेंटल हाट स्पाट्स, *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1991

अध्याय 2

अर्ने वेसिलिंड, पी. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन एंड कंट्रोल,* एन अर्बर, मिशिगन, 1975

बैच एंव विलफ्रेड : *एटमास्फेरिक पाल्यूशन,* मैक्ग्रा हिल एंड कं. न्यूयार्क, 1972

बाथन, एल. जे. : *दि अनक्लीन स्काई,* डबलडे एंड कं. न्यूयार्क, 1966

ब्रोडिना, वी. : *एअर पाल्यूशन* हरकोर्ट ब्रेस जोरनाविच, न्यूयार्क, 1971

क्लार्क, जे. डब्लयू. : वीजमैन जूनियर, डब्लयू ; हैमर, एम. जे. : *वाटर सप्लाई एंड पाल्यूशन कंट्रोल,* द्वितीय संस्करण, इंटरनेशनल टेक्स्टबुक कं., 1971

दिपांकर चक्रवर्ती एवं शिवब्रत चटर्जी : "कलकत्ता : ए सिटी इन दि मायर," *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992

डोवल, एन. के. : "न्यू दिल्ली आन दि ब्रिंक", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992

गणपति राव, वी.एस. : "हैदराबाद : बर्स्टिंग एट दि सीम्स", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992

हर मजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : *पाल्यूशन : न्यूसेन्स ऑर नेमेसिस,* एच एम एस ओ, लंदन, 1972

हर मजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "टुवार्ड्स क्लीनर एअर", 1973, एच एम एस ओ, लंदन

लेविस, एच. आर. : *विद एव्री ब्रीद यू टेक,* क्राऊन पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1965

मणिवासकम, एन. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली, 1991

पाल, ई. आर., होल्डेन, जे. एवं होम, आर. डब्लयू. (संपादक) : *मैन एंड इकोस्फीयर,* डब्लयू. एच. फ्रीमैन एंड कंपनी, सान फ्रांसिस्को, कैलीफोर्निया, 1971

पार्किन्स, एच. : *एअर पाल्यूशन,* मैक्ग्रा हिल बुक कंपनी, न्यूयार्क, 1974

शेषगिरि, एन. : *पाल्यूशन,* नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली, 1988

स्टर्न, ए. सी. (संपादक) : *एयर पाल्यूशन,* खंड 1, 2 और 3, 1976

वोहरा, के. जी. "इफ दि अर्थ लास्ट इट्स प्रोटेक्टिव ओजोन स्क्रीन", *साइंस टुडे,* अप्रैल 1980

वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन : *एयर पाल्यूशन,* मोनोग्राफ सीरीज नं. 46, जेनेवा, 1961

वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन : *हेल्थ हजार्ड्स आफ ह्यूमन एनवायरनमेंट,* जेनेवा, 1992

अध्याय 3

सम्पत कुमार, टी, सुधीनेन्दर शर्मा : "एसिड रेंस", *साइंस रिपोर्टर,* मई 1981

शेषाद्रि, बी. : "दि प्राब्लम आफ एसिड रेन" : *दि हिंदू,* 16.2.92

वैनलून, गैरी. डब्लयू. : "रेन दैट किल्स लेक्स एंड फारेस्ट्स", *साइंस टुडे,* मार्च 1983

अध्याय 4

अर्ने वेसितिंड, पी. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन एंड कंट्रोल",* एन अर्बर, मिशिगन, 1979

एरिकसन, जोन्स जे. आर. : *फिश एंड रीवर पाल्यूशन,* बटरवर्थ्स, लंदन, 1964

हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "पाल्यूशन न्यूसेन्स ऑर नेमेसिस", एच एम एस ओ, लंदन, 1972

हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "रायल कमीशन आन एनवायरनमेंटल पाल्यूशन", प्रथम एवं द्वितीय रिपोर्ट, लंदन 1971 एवं 1972

वेंकटरमाणी, जी. : "हार्म फार आउटवेज यूज", *दि हिंदू सर्वे आफ एनवायरनमेंट,* 1992

वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन : *हेल्थ हजार्ड्स आफ ह्यूमन एनवायरनमेंट,* डब्लयू. एच. ओ., जेनेवा, 1972

अध्याय 5

अमेरिकन सोसायटी फार टेस्टिंग आफ मैटीरियल्स : *ए मैनुअल आन वाटर,* एस टी एम विशेष प्रकाशन नं. 42, 1969

बेनेट, एम. के. : *दि वर्ल्ड्स फूड,* हार्पर, न्यूयार्क, 1954

बेसेलिवरे : *दि ट्रीटमेंट आफ इंडसट्रियल वेस्ट्स",* मैक्ग्रा हिल, न्यूयार्क, 1969

कैम्प, टी. आर. : *वाटर एंड इट्स इंप्योरिटीज़,* लिट्टन एजूकेशनल पब्लिशर, वैन नोस्ट्रेंड, 1963 रीनहोल्ड बुक्स, न्यूयार्क

कर, डी. ई. : *डेथ आफ स्वीट वाटर्स,* डब्लयू. डब्लयू नार्टन एंड कं., न्यूयार्क, 1966

कोलास, आर. : *रियूज़ आफ वाटर इन इंडस्ट्री,* बटरवर्थ्स, लंदन, 1963

इहर्लिच, पी. आर. एवं इहर्लिच, ए. एच. : *पाल्यूशन, रिसोर्सेज, एनवायरनमेंट,* डब्लयू. ए. फ्रीमैन, सान फ्रांसिस्को 1971

इहर्लिच, पी. आर., पाल, आर., होल्डेन, जोन एवं होम, आर. डब्ल्यू. (संपादक) :

मैन एंड दि ईकोस्फीयर, 1971, डब्लयू. एच. फ्रीमैन एंड कं., सान फ्रांसिस्को
एरिकसेन, जोन्स, जे. आर. : *फिश एंड रीवर पाल्यूशन,* बटरवर्थ्स, लंदन, 1964
फेयर, गेयर एवं ओकुन : *वाटर सप्लाई एंड वेस्ट वाटर डिस्पोजल,* जान वाइली एंड संस, न्यूयार्क, 1963
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "कोस्टल पाल्यूशन" एच एम एस ओ, लंदन, 1968
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस, "पाल्यूशन न्यूसेन्स ऑर नेमेसिस" एच एम एस ओ, लंदन, 1972
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "वाटर पाल्यूशन कंट्रोल इंजीनियरिंग", 1970, एच एम एस ओ, लंदन
हाजेज, लॉरेन्ट : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,* होल्ड, रीनहर्ट एंड विन्सटन, इंकारपोरेशन, न्यूयार्क, 1973
क्रेन्कल, पी. ए. एवं एफ. जेड. पारकर : *बायोलोजिकल आस्पेक्ट आफ थर्मल पाल्यूशन,* वैन्डरबिल, यूनीवर्सिटी प्रेस, नैशविले, 1969
लाउइस्क्लीन : *रीवर पाल्यूशन : काज़ेज एंड इफेक्ट्स* : खंड 2, बटरवर्थ्स, लंदन, 1962
मिलर, डब्लयू. जे. : *डिस्पोज़ल आफ सीवेज एंड अदर वाटर-बोर्न वेस्ट्स,* द्वितीय संस्करण, 1973 बटरवर्थ्स, लंदन
नेमेरो, एन. एल. : *थ्योरी एंड प्रैक्टिसेज़ आफ इंडसट्रियल वेस्ट्स ट्रीटमेंट,* ऐडीसन वेसले पब्लिशिंग कं., 1963
टर्क, ए., टर्क, जे. एवं विट्टर, जे. जे. : *इकोलोजी, पाल्यूशन, एनवायरनमेंट,* डब्लयू. बी. सैंडर्स कंपनी, फिलेडेल्फिया, 1972
दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट 1991 और 1992 में प्रकाशित लेख "जल प्रदूषण-सर्वत्र व्याप्त" अध्याय लिखने में बहुत उपयोगी साबित हुए
अरुणकुमार भट्ट : "नो लांगर ए सेरेन सिटी", (अहमदाबाद), 1992
चावला, एस. एस. : "दि डाईंग लेक रेनुका" (हिमाचल प्रदेश), 1992
दिपांकर चक्रवर्ती, शिवब्रत चटर्जी : "ए सिटी इन दि मायर" (कलकत्ता), 1992
डोवल, एन. के. : "आन दि ब्रिंक" (नयी दिल्ली), 1992
गंजू, ओ. एन. : "विक्टिम्स आफ ए डिफरेंट काइंड" (जम्मू और कश्मीर), 1991
गोयनका, देबी : " ए प्लानर्स नाइटमेयर" (मुंबई), 1992
एम. मालेश्वर राव : "ए ग्रोईंग इंडसट्रियल मान्सटर" (आंध्रप्रदेश), 1991
लैथंगबार्न, इबोयैमा : "वाटर बाडी गोइंग टू वेस्ट" (मणिपुर), 1991

रामकृष्णन, एन. : "ट्रबल्ड जायंट आफ साउथ" (मद्रास), 1992
रमेश उपाध्याय : "बिग प्राब्लम्स आफ छोटा नागपुर" (बिहार), 1991
शरद चाफेकर : "लेक्स एंड रीवर्स", 1991
वीजापुरकर, महेश : "डाइलमा आफ डिवेलपमेंट" (गुजरात), 1991
विनायक, एम. : "ट्रेजेडी आफ अर्बनाइजेशन" (वैस्ट बंगाल), 1991
व्यास, नीना : "इन दि पाल्यूशन कैपिटल" (दिल्ली), 1991

अध्याय 6

बारबर, बेन : "दि एनवायरनमेंट एज ए वैपन", *दि हिंदू*, 9.3.91
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "मैनुअल आन दि एवायडेंस आफ पाल्यूशन आफ दि सी बाई आयल," एच एम एस ओ, लंदन, 1967
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : "आयल पाल्यूशन आफ दि सी एंड शोर", एच. एम. एस. ओ., लंदन, 1972
हर मैजेस्टीज स्टेशनरी आफिस : " रिपोर्ट फ्राम दि सिलेक्ट कमीटी आन साईंस एंड टेक्नोलोजी– कोस्टल पाल्यूशन", एच. एम. एस. ओ., लंदन, 1967
कासिम, एस. जेड. : "आफ फार रीचिंग इम्प्लीकेशंस", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1991
शेषाद्रि, बी. : "गल्फ वार, एन एनवायरनमेंटल डिसास्टर", *दि हिंदू,* 19.8.91

अध्याय 7

अरुणकुमार भट्ट : "नो लांगर ए सेरेन सिटी", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992
बासु, नूपुर : "टू रेपिड ए ग्रोथ", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992
देबी, गोयनका : "बाम्बे : ए प्लानर्स नाइटमेयर", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992
डोवल, एन. के. : *आन दि ब्रिंक",* नयी दिल्ली, *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992
गोपाल राज : "एनर्जी फ्राम गार्बेज", *दि हिंदू,* 11.3.92
गुप्ता, टी. एन., सेनगुप्ता, जे., मुखर्जी, एस. एन., मजूमदार, एस. आर. एवं सुंदरराजन : "लो कास्ट फ्लाई ऐश बिल्डिंग मैटीरियल", *दि हिंदू,* 11.3.92
हेम शंकर रे : "वार आन वेस्ट्स", *साइंस रिपोर्टर,* जुलाई 1979
कुमारास्वामी, के. : "प्रेस मड एनरिचेज सायल फर्टिलिटी" *दि हिंदू* 11.3.92

रामकृष्णन, एन. : "ट्रबल्ड जायंट आफ साउथ", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992
रामप्रसाद वी. बी. : "वैल्थ फ्राम वेस्ट", *साइंस रिपोर्टर,* फरवरी 1980
सुंदरराजन, आर. मुरली : "डैंजर पोज्ड बाई बायोमेडिकल वेस्ट्स" *दि हिंदू*

अध्याय 8

फ्रीडलैन्डर, केनेडी, जी. जे. डब्लयू. एवं मिलर, जे. एन. : *न्यूक्लियर एंड रेडियोकेमिस्ट्री,* दूसरा संस्करण, जान वाइली एंड संस, न्यूयार्क, 1968
ग्लासटोन, एस. : *सोर्स बुक आन एटामिक एनर्जी,* तृतीय संस्करण, डी. वैन, नोस्ट्रैंड क. इंकारपोरेशन, प्रिंसटन, एन. जे., 1957
हाल, ई. जे. : *रेडिएशन एंड लाइफ,* पोर्गामान प्रेस, आक्सफोर्ड, 1976
कृष्णास्वामी, श्रीधर : "हिरोशिमा दि एगोनी पर्सिस्ट्स", *दि हिंदू,* 7.8.1988
मणिवासकम, एन. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली 1992
मुखर्जी, जे. : "डिस्पोजल आफ रेडियोएक्टिव वेस्ट्स बाई विट्रीफिकेशन", *साइंस रिपोर्टर,* जून 1979
न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन : *न्यूक्लियर पावर एंड यू,* एन. पी. सी., मुंबई 1991
शेषाद्रि बी. : "व्हाट इज टु बी डन विद न्यूक्लियर वेस्ट", *दि हिंदू,* 26.4.92

अध्याय 9

अस्थाना, जे. एस. : "इंडियन फारेस्ट्स-देयर इम्पारटेंस", *साइंस रिपोर्टर,* मार्च-अप्रैल 1981
बहुगुणा, सुंदरलाल : "लेट दि हिमालयन फोरेस्ट्स लिव", *साइंस टुडे,* मार्च 1982
बर्न्स, डब्लयू. : *नायज़ एंड मैन,* जे. बी. लिपिनकोट कं. फिलेडेल्फिया, 1969
कामेश्वरन, एस. : "नायज़ इन वर्क प्लेस", *साइंस टुडे,* अगस्त 1982
क्राइटर, के. डी. : *दि इफेक्ट्स आफ नायज़ आन मैन,* एकेडमिक प्रेस, न्यूयार्क, 1970
दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट, 1991 से लिए गए संदर्भ
भगवती, पी. एन. : "दि क्रूशियल कंडीशंस"
जोशी, वी. टी. : "नाट लर्निंग फ्राम एक्सपीरिएंस"
कृष्ण राजू, के. एस. आर. ए. : "एन ईकोसिस्टम अंडर स्ट्रेन"
माधव शर्मा, के. : "फार हार्मोनी विद नेचर"

रामकृष्णन, पी. एस. : "स्ट्राइकिंग ए बैलेंस"
राव, यू. एन. : "असेस्मेंट फ्राम अबाव"

अध्याय 10

मणिवासकम, एन. : *एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 1992

शंकर, एन. : "इंडस्ट्री एलोन नाट टु ब्लेम", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1992

सिंगर, एस. एफ. (संपादक) : *ग्लोबल इफेक्ट्स आफ एनवायरनमेंटल पाल्यूशन,* स्प्रिंगर, न्यूयार्क, 1970

स्वामीनाथन, एम. एस. : "मैलेडीज एंड रेमेडीज", *दि हिंदू सर्वे आफ दि एनवायरनमेंट,* 1991

टर्क, ए., टर्क, जे. एवं विट्टेस, जे. टी. : *"इकोलोजी, पाल्यूशन, एनवायरनमेंट",* डब्लयू. बी. सैंडर्स कंपनी, फिलेडेल्फिया,

यू. एस. एनवायरनमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी : *एनर्जी रिकवरी फ्राम वेस्ट,* ई. पी. ए., वाशिंगटन, डी. सी., 1972

वेंगर एंड रिचर्ड, एच. : *एनवायरनमेंट एंड मैन,* डब्लयू. डब्लयू. नार्टन एंड कंपनी, न्यूयार्क, 1971

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित